भाव-बोध : नव-किरणें

★

बीज हूं
बीज था
पड़ा—
अविचल, निष्पंद
झाड़ों को, लताओं को
देख, आश्चर्यचकित होता
तभी कोई बोला—
स्वजातीय अनुज हो
पूछा मैंने, किसने,
किसको कहा ?
बड़े दुलार से कहा उसने—
हां, सच ही तुम
हमारे वंशज हो
आह ! क्या यह सत्य ?
क्या सचमुच इतना
विशाल पेड़
मैं हो सकता भला ?
पूरा झंझोड़ दिया उसने !
तभी मिला एक
चतुर माली
करुणावश हंसा
ठीक कर मट्टी—खाद
उचित पानी और प्रकाश
और यह क्या !
इतनी वेदना, इतनी तड़प

और यह घुटन
यह कैसा मरण
या नवजीवन ?
और फिर यह अंकुर
नये पल्लव, नया प्रकाश
बढ़ने की तीव्र आकांक्षा
किसे दूं धन्यवाद ?
चतुर माली—
प्रिय रजनीश को ?
या मेरे निज स्वभाव को
जो छिपा था बीज रूप में
किसे दूं धन्यवाद ?
किसे दूं ?

★

कितने प्रणाम ?
शत-शत ?
नहीं—
भी क्या
गिनने के लायक हैं !
ये भी क्या
कहने के लायक हैं !
जिसने जुटाया प्रकाश—
नव संभावना का
उसे क्या, बस प्रणाम !!

● *रामूलाल संकलेचा*

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

मार्च १९७३

युगक्रांति

वर्ष – ४ अंक – १७ : १८

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रांद

मार्च '७३

– मानसेवी सम्पादक मण्डल –

अरविन्द कुमार

सुश्री डा. उर्मिला ✲ 'आकुल' राजेन्द्र

आलोक पाण्डे

व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

दिव्य वाणी	४	मा योग अभीप्सा
योग और समाधि	५	संकलन : साध्वी योग गुणा, बंबई
जो है, है	१७	संकलन : मा योग क्रांति
आत्म-दर्शन	२१	संकलन : स्वामी दयाल भारती, जबलपुर
भगवान रजनीश बोधि-दिवस पर विशेष प्रस्तुतीकरण	४१	युक्रांद परिवार
विरोधाभासी रजनीश व ओल्ड फोसिलस	४२	स्वामी चैतन्य बोधिसत्व, अहमदाबाद
आनंद-शिला साधना शिविर एक झलक	४७	स्वामी अगेह भारती, जबलपुर
जीवन सहजता में पूर्ण सौरभ बिखेरता है	५७	संकलन : अरविंदकुमार, जबलपुर

गीत : काव्य

भाव-बोध : नव किरणें	क	राणूलाल संकलेचा, धमतरी
कृतज्ञता-ज्ञापन	व र	स्वमी परमानंद भारती, अजमेर
कासे कहों	१६	स्वामी अगेह भारती
द्वार पहुंचकर मैं रुक जाऊं	२०	स्वामी अगेह भारती
अंतस्-स्फुरण : पांच पुष्प	३०	स्वामी चैतन्य भारती, दिल्ली
Enlightened Day	४०	Harshad Patel
प्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी	४६	स्वामी योग प्रीतम, भीलवाड़ा

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.

मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

महाकारुणिक

भगवान रजनीश

२१ मार्च, १९७३

बोधि दिवस

मौलिश्री वृक्ष, भंवरताल उद्यान, जबलपुर
—जहां साधक रात्रि २ बजे बोधि
आनंदोत्सव मनाने जा रहे हैं।

दिव्य वाणी

(भगवान श्री के अमृत-वचनों से)

- अहिंसा का अर्थ है अकर्म, अहिंसा का अर्थ है मैं कुछ न बदलूंगा, मैं कुछ न चाहूंगा, मैं अनुपस्थित हो जाऊंगा ।

- घटनायें घटती हैं । तुम नाहक उसे घटाने वाले मत बनो, तुम इतना ही कर लो तो काफी है कि तुम ना करने वाले हो जाओ ।

- संयम का विधायक अर्थ है स्वयं में इतना ठहर जाना कि मन की अति पर कोई हलन-चलन न हो ।

- जब हम स्वीकार कर लेते हैं तो एक अनूठी सुगंध से जीवन भरना शुरू हो जाता है, सब दुर्गन्ध अस्वीकार की दुर्गन्ध है ।

- ध्यान को तो करके ही समझा जा सकता है ! ध्यान का अर्थ है स्वाभाव में ठहर जाना । जो मैं जैसा हूं, वहीं ठहर जाना, उसी में जीना ।

—संकलन : *मा योग अभीप्सा,*
जूनागढ़

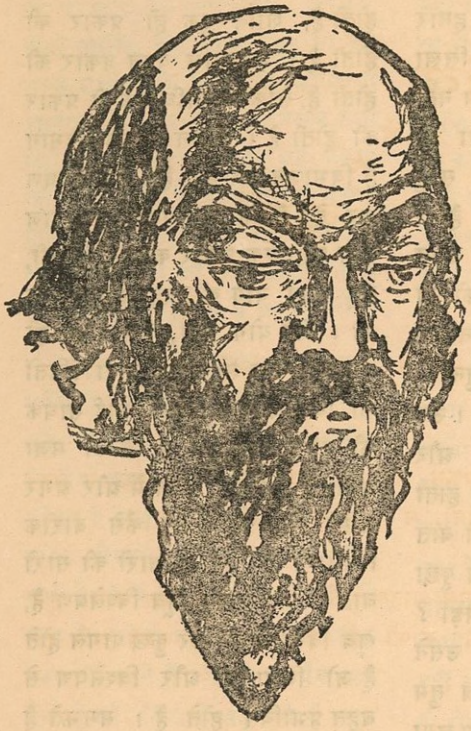

योग और समाधि

प्रश्न : हठयोग द्वारा समाधि प्राप्त करनी चाहिए या राजयोग द्वारा ?

भगवान श्री :

समाधि भी कोई बहुत प्रकार की होती है ? हठ योग की समाधि कोई अलग होती है और राज योग की समाधि कोई अलग होती है ? हम तो हर चीज में विभाजन किये हुए हैं और हर चीज में लेबल लगाये हुए हैं। हर चीज में ग्रेडेशन किये हुए हैं। वह दूकान की आदत है न दिमाग में, बाजार की आदत है, वहाँ हर चीज का लेबल है। हर चीज का अलग डब्बा है, हर चीज का अलग-अलग खांचा है। वही हमारे धर्म के बाबद भी है।

एक बाउल साधु हुआ बंगाल में। वह वैष्णव साधु था। बाउल तो प्रेम की बात करते हैं। वे तो कहते हैं कि प्रेम सब कुछ है, वही परमात्मा है। एक बहुत बड़ा पण्डित उसके पास गया। उस पण्डित ने पूछा कि कितने प्रकार का प्रेम होता है। बाउल ने कहा, "प्रेम और प्रकार ? प्रेम तो हम जानते हैं, प्रकार जानते नहीं।" उसने कहा, "कुछ भी नहीं जाना,

जीवन तुम्हारा व्यर्थ गया । हमारे शास्त्र में प्रेम पाँच प्रकार का लिखा हुआ है और तुम्हें यह भी पता नहीं कि कितने प्रकार का प्रेम होता है। तुम प्रेम क्या जानोगे ।" उस साधु ने कहा कि जब शास्त्र में लिखा है तो ठीक ही लिखा होगा, मैं ही गलत होऊँगा । लेकिन मैं तो प्रेम को ही जानता हूँ, प्रकार को नहीं जानता । फिर भी तुम कहते हो तो मैं सुन लूँ, तुम्हारे शास्त्र को मुझे सुना दो । उस पंडित ने अपने शास्त्र को खोला और बताया कि कितने प्रकार का प्रेम होता है, सब समझाया । जब वह पूरी बात समझा चुका तो उसने फ़कीर से पूछा कि समझे कुछ, क्या प्रभाव पड़ा ? वह बाउल हैरान सा हुआ और उसने कहा कि क्या प्रभाव पड़ा ? जब तुम शास्त्र को पढ़ने लगे तो मुझे ऐसा लगा कि कोई सुनार सोने को कसने के पत्थर लाकर फूलों की बगिया में आ गया और फूलों को पत्थर पर कस कसकर देख रहा है, कि कौनसा फूल असली है और कौनसा नकली। पागल, प्रेम में कहीं प्रकार है, और जहाँ प्रकार है वहाँ कोई प्रेम होगा ? प्रेम तो बस एक ही है ।

समाधि भी बस एक ही है । कोई २५ तरह की समाधि नहीं होती । बीमारियाँ बहुत तरह की होती हैं। खयाल रखें, स्वास्थ्य एक ही प्रकार का होता है । अशांति बहुत प्रकार की होती है, शांति एक ही प्रकार की होती है । असमाधि बहुत प्रकार की होती है, लेकिन समाधि एक ही प्रकार की होती है । लेकिन जिनके दिमाग हैं विभाजन कर लेते हैं, वे विश्लेषण कर देते हैं कि एक प्रकार की राज योग की, एक प्रकार की हठयोग की, यह फलां योग की, यह अमुक योग की । कोई योग नहीं, सिर्फ़ एक ही योग है । यह सारा का सारा पंडितों का विभाजन है । यह कोई साधक की दृष्टि नहीं है । पंडित को मजा आता है विश्लेषण करने में और अगर शास्त्रों को पढ़िये तो कैसे बारीक विश्लेषण हैं । हवा में सारी की सारी बातें हैं और उसमें खूब विश्लेषण हैं, खूब विभाजन हैं; पर कुछ पागल होते हैं जो विभाजन और विश्लेषण से बहुत प्रभावित होते हैं । समझते हैं यह कोई खास बात है । परंतु जीवन में कोई विभाजन नहीं है, कोई विश्लेपण नहीं है । जीवन इकट्ठा है और समाधि भी एक है । क्या है समाधि का अर्थ ?

समाधि का अर्थ है चित्त का इतना शान्त हो जाना कि वहां कोई असमाधान न रह जाय, वहां कोई अशान्त न रह जाय । चित्त का ऐसा शून्य हो जाना कि चित्त में कोई क्रिया न रह जाय, । चित्त में कोई विकार न रह जाय, कोई असंतोष न रह जाय, चित्त ऐसी समता की स्थिति

को पा जाय कि वहाँ कोई हलचल, कोई मूवमेंट, कोई गति न हो, तो उस परम शान्ति की स्थिति में जो जाना जायगा वह सत्य होगा। समाधि सत्य का द्वार है। समाधि में कई प्रकार नहीं होते और न योग में कई प्रकार होते हैं, लेकिन हमारा विभाजन है। बंटे हुए शास्त्रों को हम पकड़ लेते हैं और सोच लेते हैं कि ये प्रकार होंगे।

जब हम चित्त की शून्यता पर विचार करेंगे तो समाधि का भी विचार करेंगे। तब समझाने की मैं कोशिश करूँगा कि मेरी बात आपके ख्याल में आजाय। जीवन में ये चीजें एक ही हैं और अगर अनेक दीखती हों, तो जरूर हमारी कोई देखने में भूल है। इन अनेकों के नाम से अनेक पन्थ बनते हैं, अनेक सम्प्रदाय बनते हैं। उनके समर्थक खड़े होते हैं और विरोधी खड़े होते हैं। एक कोलाहल मच जाता है सारी दुनिया में जिससे सत्य तो दूर रह जाता है और सत्य के सम्बन्ध में जो मत होते हैं, उसे विवाद घेर लेते हैं।

एक साधु से किसी ने जाकर पूछा था कि मैं सत्य को जानना चाहता हूँ। उस साधु ने कहा कि तुम सत्य को जानना चाहते हो या सत्य के सम्बन्ध में ? अगर सत्य के सम्बन्ध में जानना हो तो कहीं और जाओ। बहुत लोग बताने वाले होंगे जो सत्य के सम्बन्ध में बता देंगे। और अगर सत्य को जानना है तो फिर यहाँ रुक जाओ लेकिन सत्य के सम्बन्ध में दुबारा प्रश्न मत पूछना। वह बहुत घबरा गया। एक तो रास्ता यह है कि सत्य के सम्बन्ध में जानना हो तो कहीं और जाओ बहुत हैं बताने वाले। लेकिन सत्य को ही जानना हो तो रुक जाओ यहाँ। फिर दोबारा मत पूछना सत्य के बाबत।

उसने कहा मैं राजी हूँ। मैं तो सत्य को ही जानने आया हूँ। मैं रुक जाता हूं। उस साधु ने कहा, इस आश्रम में पाँच सौ भिक्षु हैं, इनके लिए रोज चावल बनता है। तुम जाओ और रसोईघर के पीछे के झोपड़े में जीवन गुजारो और रोज चावल कूटो। और कुछ मत करना। किसी से ज्यादा बात करने की जरूरत नहीं न तुम्हें वस्त्र देंगे साधु के। तुम तो सिर्फ चावल कूटो और एक ही बात का ख्याल रखना कि चित्त जब चावल कूटे तो सिर्फ चावल कूटे और कुछ न करे। बस चावल ही कूटे। जब थक जाओ तो सो जाओ, जब जाग जाओ तो चावल कूटो और दोबारा मेरे पास मत आना। जरूरत होगी तो मैं आ जाऊंगा।

वर्ष बीता, दो वर्ष बीते, तीन वर्ष बीते, वह चावल कूटता था, कूटता रहा। आश्रम में किसी को पता भी नहीं कि वहां भी कोई चावल कूट रहा है। आश्रम में लोग विचार कर रहे हैं कि समाधि क्या है, सत्य

क्या है, चर्चायें हो रही हैं। शास्त्र पढ़े जा रहे हैं और एक आदमी है जो सिर्फ चावल कूट रहा है वहाँ पीछे। उसे शास्त्र से कोई मतलब नहीं। वह किसी से बात नहीं करता। उस आश्रम के पाँच सौ भिक्षु इसको मूढ़ समझते हैं। धीरे-धीरे लोग उसको भूल ही गये। ऐसे आदमी को कौन याद रखता है? जो कोलाहल करे, उपद्रव करे उसे कोई याद रखता है। वह बेचारा शान्त था, वहाँ पीछे चावल कूटता था, उसे कौन याद करे। उसे सारे लोग भूल गये। वह है भी, यह भी ख्याल में नहीं रहा। जैसे और सब चीजें थीं वैसे वह भी था। ऐसे कोई दस वर्ष बीत गये। वह किसी से बात नहीं करता है, अपना चावल कूटता है, सो जाता है। कुछ दिन तक पुराने विचार मन में घूमे, फिर भी चावल कूटता था। नये विचारों की उत्पत्ति नहीं होती थी, पुराने विचार जब तक घूमते। वह तो अपना चावल कूटता है। ध्यान उसी पर रखता है। उसका मूसल ऊपर गया तो चित्त ऊपर जाता है, मूसल नीचे गया तो चित्त नीचे जाता है। चावल को उठाता तो चित्त चावल को उठाता और चावल को रखता तो चित्त चावल को रखता। जो करता, चित्त वही करता। सो जाता तो चित्त सो जाता। ऐसे बारह वर्ष बीत गये। उन बारह वर्षों में उस आश्रम में न मालूम कितने पंडित हो गये। लोगों ने बारह वर्षों में कितना ज्ञान इकट्ठा कर लिया और वह बेचारा अज्ञानी का अज्ञानी बना रहा।

बारह वर्षों के बाद गुरु वृद्ध हुआ और उसने कहा कि अब मैं दो चार दिनों में अपना जीवन छोड़ देने वाला हूं। मैं चाहता हूं कि किसी को मैं अपनी जगह बैठा दूं। अतः जो योग्य हो वह मेरी जगह बैठ जायगा। उसने कहा, परीक्षा के लिए तुम लोग मुझे एक कागज पर चार पंक्तियों में लिखकर दो कि सत्य क्या है? जिसका उत्तर मुझे ठीक लगेगा कि यह अनुभव से आया है; उसको मैं बिठा दूंगा। वह मेरी जगह पर होगा। परन्तु याद रखना, मुझे धोखा नहीं दे सकते हो। शास्त्र के उत्तर को मैं पहचान लूंगा कि शास्त्र से कौन-सा उत्तर आ रहा है। धोखा देने की कोशिश मत करना। उस गुरु को लोग जानते थे कि वह जानकार है, उसे धोखा नहीं दिया जा सकता था। बहुत मुश्किल से एक आदमी ने वहाँ हिम्मत की जो सर्वाधिक ज्ञानी समझा जाता था उस आश्रम में। उसने हिम्मत की, लेकिन उसकी भी हिम्मत न हुई कि वह सीधा जाकर गुरु को दे दे। वह भी चोरी से रात में उसके झोपड़े के द्वार पर लिख आया। उसने चार पंक्तियां लिखीं। चार पंक्तियां वह उस दीवाल के ऊपर लिख आया और

भाग आया। अपना दस्तखत भी नहीं किया क्योंकि शायद ये शास्त्र से ही हो, शक तो उसे खुद भी था, क्योंकि अनुभव तो उसे था नहीं। उसने लिखा कि "चित्त एक दर्पण की भाँति है, जिस पर विचार की और विकार की धूल जम जाती है। उस धूल को हम झाड़ दें तो सत्य के दर्शन हो जायेंगे।"

ठीक ही लिखा है। लेकिन गुरु ने सुबह उठकर कहा कि "यह किस पागल ने दीवाल खराब कर दी।" हम भी कहते कि यह ठीक ही लिखा है। लेकिन गुरु ने कहा कि "यह किस पागल ने दीवाल खराब कर दी। पकड़ो, किसने यह लिखा ?" वह तो अपना दस्तखत भी नहीं कर गया था। वह तो छिप रहा था कि कहीं कोई कह न दे कि मैंने लिखा है, क्योंकि गुरु ने कहा है कि यह सब शास्त्र की बकवास है। यह किसी किताब से सीख लिया है इस आदमी ने। यह खबर पूरे आश्रम में फैल गयी। वह जो चावल कूटने वाला था उसके पास से भी भिक्षु निकल कर गये। उन्होंने कहा, देखा, कितना अद्‌भुत वचन लिखा। लिखा कि मन दर्पण की तरह है, धूल जम जाती है, विचार और विकार की, उसे झाड़ दें तो दर्पण में सत्य दिखायी पड़ने लगेगा। इतना अद्‌भुत वचन लिखा और गुरु ने उसको भी इन्कार कर दिया। अब क्या होगा ? क्या गुरु की जगह खाली रहेगी ? वह आदमी चावल कूट रहा था। वह चावल कूटते हंसने लगा। उसे तो कभी किसी ने हंसते भी नहीं देखा था। उन्होंने पूछा, "तुम क्यों हंस रहे हो ?" उसने कहा, "यों ही हंसी आ गयी।" "फिर भी कोई हंसने की वजह ?" उसने कहा "गुरु ने ठीक कहा—दीवाल खराब कर दी।" उसे तो कभी किसी ने बोलते नहीं सुना था। उन्होंने कहा, "पागल, क्या तुमको पता है कि क्या ठीक है ?" वह बोला, मैं लिखना भूल गया हूं। मैं बोले देता हूं, तुम लिख दो।" उसने बोला : "मन का कोई दर्पण ही नहीं। इसमें धूल जमेगी कहां ? जो इस सत्य को जानता है वह सत्य को जानता है।" उसने कहा, "मन का कोई दर्पण ही नहीं, धूल जमेगी कहाँ ? जो इस सत्य को जानता है वह सत्य को जानता है। लिख दो।" गुरु भागा आया और उसके पैर पर गिर पड़ा कि ठीक है। इसी दिन की प्रतीक्षा थी मुझे। यह आशा केवल तुमसे थी। यह समाधि की उपलब्धि हुई। वे शास्त्र को पढ़ने वाले लोग शास्त्र पढ़ते रहे, यह व्यक्ति समाधि को उपलब्ध हुआ।

समाधि तो एक ही है। किसी भी भांति विचार धीरे-धीरे शून्य हो जायं। मन धीरे-धीरे विलीन हो जायेगा, जो शेष रह जायगा, मन के विलीन हो जाने पर, वही है। कहीं

से और किसी भी भांति कोई इस सत्य को पहुंच जाय, वह समाधि को उपलब्ध हो गया और समाधि का मूल सार इतना है कि विचार और मन शून्य हो जाये। तब जो शेष रह जायगा वही एक है आत्मा, वही है सत्य वही है परमात्मा, वही समाधि— जो नाम देना चाहें दें, नाम से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

आत्म-ज्ञान, सत्य दर्शन, ईश्वर-दर्शन, क्या इन सबका एक ही अर्थ है ?

बिल्कुल एक ही अर्थ है। लेकिन अगर पंडितों से पूंछिये तो वे कहेंगे— बिल्कुल अलग-अलग अर्थ हैं। वे कहेंगे ईश्वर ? जैन कहेगा—"ईश्वर तो होता ही नहीं।" आप कहेंगे आत्मा ? बौद्ध कहेंगे—"आत्मा तो होती ही नहीं।" आप कहेंगे सत्य, कोई कहेगा, "सत्य ? सत्य तो कहा ही नहीं जा सकता।" आत्मा या सत्य या ईश्वर, ऐसा लगेगा, अलग-अलग हैं। जो है उसका कोई नाम नहीं है। आपका जो नाम है, आप समझते हैं, वह आपका नाम है ? किसी भी चीज का जो नाम है वह आप समझते हैं कि उसका नाम है ? नाम तो दिया हुआ है, लगाया हुआ है। कामचलाऊ है। आपको किसी ने, या मां बाप ने राज कह दिया तो आप राज हो गये, तो आप सोचते हैं राज आपका नाम है। आप कोई नाम लेकर पैदा हुए हैं ? आप कोई नाम लेकर मरे हैं ? यह लेबल तो लगाया हुआ है ऊपर से, बिल्कुल साधारण है। जरा भी इसमें चिपकान नहीं है। जरा सी चीज से निकल जायगा, इसमें कोई दिक्कत नहीं है। चाहे अदालत में जायें, एक रुपया जमा करें नाम बदल दें, नाम कोई अर्थ नहीं रखता। किसी का कोई भी नाम नहीं है। सब अनाम हैं। नाम मनुष्य की ईजाद है। मनुष्य की कुछ ईजादें हैं। उनमें नाम भी उसकी ईजाद है और सबसे खतरनाक ईजाद है। लेकिन बड़ी जरूरी है, इसलिए इसको करना पड़ता है। किसी का कोई नाम नहीं है। तो जो है, वह जो टोटलिटी है, वह जो समग्र सत्ता है, सारे जगत की जो सत्ता है उसका कोई नाम कैसे होगा ! हम अपने बच्चों के नाम रखते हैं, बुद्धि हमारी गड़बड़ है। नाम रखने की आदत है इसलिए भगवान का भी नाम रखते हैं। नाम रखने की आदत हमारे मन में है, क्योंकि बिना नाम के हम कैसे पहचानेंगे किसी को भी। इसलिये उसका भी कोई नाम रख देते हैं और फिर नाम पर लड़ते हैं, क्योंकि दूसरा कोई दूसरा नाम रख देता है, तीसरा कोई तीसरा नाम रख देता है। परमात्मा उस पिता के समान है जिसके बहुत से लड़के हैं और सब उसके अलग-अलग नाम रखे हुए हैं।

हर एक नाम वाला दावा करता है कि यही नाम सत्य है, कोई नाम नहीं है। परन्तु जो है उसका कोई नाम नहीं है। उसे सत्य कहें, उसे नाम कहें, उसे ईश्वर कहें लेकिन इनमें ध्वनियाँ अलग-अलग हैं। क्योंकि हमने इन शब्दों को अलग-अलग ध्वनियाँ दे दी हैं इसलिए उचित है कि उसे सत्य कहें या अधिक उचित है कि कहें कि जो है वही। आप चाहे उसे ईश्वर कहें या आत्मा कहें। लेकिन स्मरण रखें, उसका कोई नाम नहीं है। अगर दुनिया में मनुष्य न हो तो किसी भी चीज का कोई नाम न होगा। मनुष्य की ईजाद है नाम और नाम ने बहुत दिक्कत खड़ी कर दी है। नाम पर कितने लोग लड़ पड़े और मर गये। नाम पर कितनी हत्यायें हो गयीं, क्योंकि कोई उसे अल्लाह कहता है, कोई उसे राम कहता है। कितना पागलपन हुआ है और इस पागलपन का विचार करें तो बड़ी हैरानी होती है कि दुनिया कैसे धार्मिक हो सकती है, जो नामों पर लड़ पड़ती है।

एक मित्र मेरे घर ठहरे थे। सुबह-सुबह मुझसे बोले, "मैं मन्दिर जाना चाहता हूं। थोड़ा एकान्त में शान्ति से बैठूंगा, कुछ परमात्मा का स्मरण करूँगा।" मैंने कहा, "देखिये! मन्दिर तो यहां पर बाजार में है। वहां बड़ी भीड़-भाड़ और कोलाहल है। चर्च मेरे पास में है, तो वहीं चले जाइये। यहां बड़ी शान्ति है, बड़ा एकान्त है। यहां कोई भी नहीं, कोई गड़बड़ नहीं।" वह बोले, चर्च! आप कहते क्या हैं! मैंने कहा, "सिवाय नाम के और क्या फर्क है। कल आप खरीद लें, इस चर्च को हटा दें, इसे मन्दिर का नाम कर दें, यह मन्दिर हो जायगा। यह एक मकान ही है न? इसमें कोई क्या फर्क है? अभी कलकत्ते में मेरे मित्रों ने एक चर्च खरीद लिया और उसको मन्दिर बना लिया तो वह मन्दिर हो गया। अब उसमें जैनी जाते हैं। कल तक उसमें कोई भी जैनी नहीं जाता था। कैसा पागलपन है! वह मकान वही का वही है, वह दीवाल वही की वही है, वह मिट्टी वही की वही है, सब वही का वही है लेकिन अब वह मन्दिर है, तब वह चर्च था। तब वहां किसी दूसरे भगवान का डेरा था अब वहां किसी दूसरे भगवान का डेरा है। जैसे भगवान बहुत हैं। लेकिन हमारी नाम की बहुत गहरी पकड़ है, बहुत बचकानी पकड़ है, एकदम बाल-बुद्धि से भरी हमारी पकड़ है और उस पर हम तलवार उठा लेते हैं। उस पर हम कत्ल करेंगे, मुल्कों को नष्ट करेंगे, आग लगा देंगे और तबाह कर देंगे। दुनिया में धार्मिक लोगों ने जितनी दुष्टता की है और जितनी मूर्खता की है उतनी किसी और ने नहीं की है और वह भी सिर्फ नामों की वजह से, लेकिन फिर भी आंखें

नहीं खुलतीं। और फिर भी हम नाम को लेकर चिल्लाते हैं और पकड़ते हैं और नाम पर हम न मालूम क्या-क्या करते रहे। मैं आपको कहूं, नाम बड़ी भ्रामक बात है, नाम का कोई अर्थ नहीं है। सच्चाई को देखें, नाम को मत देखें, अन्यथा नाम पर अटक जायेंगे और सच्चाई को नहीं देख पायेंगे। नाम को छोड़ दें और देखें कि मतलब क्या है। इसलिए मैं सबका एक प्रयोग करता हूं। मैं कहता हूं ईश्वर दर्शन में आत्मदर्शन या सत्य है। इसलिए कि ताकि अलग-अलग नामों वाले लोग समझें कि मैं किसी एक ही चीज की चर्चा कर रहा हूं। अगर मैं कहूं कि "ईश्वर दर्शन", तो बहुत से लोग समझेंगे कि न मालूम मैं हिन्दू धर्म का आदमी हूं या क्या हूं। अगर मैं कहूं कि "आत्म दर्शन", तो कुछ समझेंगे कि पता नहीं यह कौन से धर्म के हैं कि ईश्वर की बात नहीं करते। अतः मैं जानकर सबका इकट्ठा प्रयोग करता हूं ताकि आपको ख्याल आ सके कि जो है, उसका कोई नाम नहीं है और उसका ही विचार करना है। उसको ही अनुभव करना है, उसका ही साक्षात्कार करना है। सब नाम छोड़ दें और अनाम के प्रति जागें। तो जिसका कोई नाम नहीं है उसके प्रति जागें। जिसका कोई रूप नहीं है उसके प्रति जागें, जो कहीं भी किसी सीमा में आबद्ध नहीं है उसके प्रति जागें। वह जो सीमा में नहीं है, नाम में नहीं है, रूप में नहीं है वही है। फिर उसको चाहे परमात्मा कहें, चाहे आत्मा कहें, चाहे सत्य कहें, कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्न : मनुष्य पाप क्यों करता है ? और पाप का उत्पादक कौन है ?

चाओ

जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है। जो वाणी का आकार ले सकता है, आकार लेते ही वह अपनी निराकार सत्ता को अनिवार्यतः खो देता है।

जैसे कोई आकाश को चित्रित करे, तो आकाश कभी भी चित्रित नहीं होगा। क्योंकि जो भी चित्र में बनेगा, निश्चित ही आकाश नहीं होगा — आकाश तो वह है, जो सबको घेरे हुए है; चित्र तो किसी को भी नहीं घेर पाएगा, वह तो स्वयं ही आकाश से घिरा हुआ है।

भगवान श्री :

उत्पादक तो आप ही हैं। अगर मैं कह रहा हूं कि आप ही हैं तो मैं आपको ही कह रहा हूं, आपके पड़ोसी आदमी को नहीं। और कोई पाप क्यों करता है ? सच तो यह है कि इस दुनिया में कोई भी पाप नहीं कर रहा है। पाप होता है, पाप

किया ही नहीं जाता और न पुण्य किया जाता है। पुण्य भी होता है और पाप भी होता है। इसे थोड़ा समझ लेना पड़ेगा। क्योंकि, सामान्यतः हम ऐसे ही कहते हैं कि फलां आदमी पाप करता है, फलां आदमी पुण्य करता है। यानी हमें ख्याल कुछ ऐसा है जैसे कि आदमी के वश में है। वह चाहे तो पुण्य करे, चाहे तो पाप करे। जब आप पाप करते हैं तो क्या कभी आपने विचार किया है? क्या आपके बस में था कि आप चाहते तो नहीं करते और अगर वश में था तो रुक क्यों नहीं गये? जब आप क्रोध करते हैं तो क्या आप जानते हैं कि आपके वश में था कि आप क्रोध में न आते? जब कोई आदमी किसी की हत्या करता है तो आप सोचते हैं कि उसके वश में था कि वह हत्या नहीं करता? तो क्या आप सोचते हैं कि वश में होते हुए उसने हत्या की है?

मेरी दृष्टि ऐसी नहीं है। **मनुष्य अगर मूर्छित है तो उससे पाप होगा ही। पाप मूर्छा का सहज परिणाम है। कोई पाप करता नहीं है। मूर्छा में पाप होता है, इसलिए किसी पापी के प्रति मेरे मन में कोई निन्दा नहीं है। और यह जो आप कहते हैं कि पाप करता है, यह आप असल में निन्दा लेने का रस लेना चाहते हैं।**

दुनिया में सभी साधु और सज्जन दूसरे को पापी कहकर मजा लेना चाहते हैं, रस लेना चाहते हैं। क्योंकि जितने जोर से वह आपको पापी सिद्ध करते हैं वह उतने ही ज्यादा पुण्यात्मा सिद्ध हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में निन्दा का रस है, कन्डमनेशन का रस है। दूसरे आदमी की निन्दा करो और कहो, वह पापी है और पाप करता है। इस दुनिया में जो बहुत गहरे पापी हैं वह वह अपने पाप को छिपाने के लिए चिल्लाते फिरते हैं कि फलां-फलां पापी है और फलाँ-फलां लोग पाप कर रहे हैं और पाप से बचें। क्योंकि जो चिल्लाने लगता है कि पाप से बचो, तो आपको यह ख्याल पैदा हो जाता है कि यह आदमी कम से कम तो पाप से बचा ही होगा। अगर किसी आदमी

उपनिषद्

तो, चित्र में बना हुआ जैसा आकाश होगा, ऐसा ही शब्द में बना हुआ सत्य होगा। शब्द में डालते ही सत्य असत्य हो जाता है—जो कहना चाहा था, वह अनकहा रह जाता है और जो नहीं कहना चाहा था, वह मुखर हो जाता है।

●

[भगवान श्री द्वारा लाओत्से पर दी गई प्रवचन-श्रृङ्खला के अन्तर्गत प्रकाशित प्रथम पुस्तक *'ताओ-उपनिषद्'* से उद्धरित]

ने खुद ही चोरी की है और वह जोर से चिल्लाने लगे कि "चोरी हो गयी है पकड़ो चोर को" तब उसको तो आप छोड़ ही देगें, क्योंकि वह तो बेचारा खुद ही चिल्ला रहा है, उसने थोड़े ही चोरी की होगी। वह खुद ही चिल्ला रहा है कि चोरी हो गयी, चोर को पकड़ो। उसको कौन पकड़ेगा, उसको लोग छोड़ देगे।

इसलिये दुनिया में जो बहुत होशियार हैं वे दूसरों को चिल्लाते हैं कि फलां-फलां पापी हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि कोई भी मनुष्य पाप नहीं करता है। पाप होता है और होने का अर्थ मेरा यह है कि चेतना की एक दशा है, मूर्च्छा। चेतना की एक अवस्था, जब होश नहीं होता। हम क्या कर रहे हैं, इसका भी हमें होश नहीं होता है। कुछ काम हमसे होते हैं, आप स्मरण करें, आपने जब भी क्रोध किया है तो क्या आपने विचारा था ? क्या आपने तय किया था कि अब मैं क्रोध करूंगा ? क्या आपने संकल्प किया था कि अब मैं क्रोध करता हूं ? आपने कुछ भी नहीं किया था। आपने अचानक पाया कि आप क्रोध में हैं।

गुरजेएफ नाम का यूनान में एक फकीर था। वह एक गांव से निकला था। एक बाजार में उसके कुछ दुश्मन थे। जब वह वहां से निकला तो उसे कुछ लोगों ने पकड़ लिया और बहुत गालियाँ दीं। उस पर बहुत गुस्सा हुए और उसका बहुत अपमान किया। जब वे सारी गालियां दे चुके, अपमान कर चुके तो गुरजेएफ ने कहा, "मैं कल फिर आऊंगा इसका उत्तर देने।" वे लोग तो हैरान हो गये। उन्होंने गालियां दीं, अपमान किया, बड़े अभद्र शब्द कहे। किन्तु गुरजेएफ ने कहा, "मैं कल आऊँगा इसका उत्तर देने।" उन्होंने कहा, "क्या पागल हो। कहीं गालियों और अपमान का उत्तर कल दिया जाता है। जो देना हो, अभी दो।" गुरजेएफ ने कहा : "हम मूर्छा में कुछ भी नहीं कहते, हम तो विवेक करते हैं, विचार करते हैं। सोचेंगे, अगर जरूरी समझेंगे कि क्रोध करना है, तो करेंगे, अगर नहीं समझेंगे तो नहीं करेंगे। हो सकता हैं, तुम जो कह रहे हो वह ठीक ही हो। मुझे कोई कठिनाई नहीं। तुम जो गालियां दे रहे हो, सच ही हो। तो हम फिर आयेंगे ही नहीं और समझेंगे कि उन्होंने जो कहा, ठीक ही कहा। तो हम उसको अपने चरित्र का बखान समझेंगे, उसको निन्दा ही नहीं समझेंगे कि सच्ची बात कह दी। अगर समझेंगे कि क्रोध करना जरूरी है तो क्रोध करेंगे।"

उन लोगों ने कहा, "तुम बहुत गड़बड़ आदमी हो। कभी किसी ने सोच-विचार कर क्रोध किया है। क्रोध तो बिना विचार के अविचार में

ही होता है, कभी क्रोध सोच-विचार कर नहीं होता।" सच तो यह है कि कोई पाप सोच-विचार कर नहीं किया जा सकता। किसी पाप को कांशेसली, सचेत रूप से नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं कहता नहीं कि पाप किया जाता है। मैं तो कहता हूं कि पाप होता है। आप कहेंगे कि इसका मतलब यह हुआ कि हमारे हाथ में ही नहीं, अब पाप होता है तो हम क्या करें, हत्यारा कहेगा कि हम क्या करें, हत्या होती है। क्रोध होता है, हम क्या करें। सच है। सवाल इस तल पर कुछ भी नहीं करना है। पाप का होना इस बात की सूचना है कि आत्मा सोई हुई है। पाप के तल पर न कोई परिवर्तन हो सकता है, न करना है, न किया जा सकता है। यह तो केवल खबर है इस बात की कि भीतर आत्मा सोयी हुई है। पाप बाहर है, इस बात की खबर है कि भीतर आत्मा सोयी हुई है। इस आत्मा को जगाने का सवाल है, पाप को बदलने का सवाल नहीं है। इस आत्मा को जगाने का सवाल है, वह आत्मा जग जाय तो आप पाइयेगा कि पाप तो विलीन हो गया, उसकी जगह पुण्य शुरू हो गया।

और पुण्य भी होता है, वह भी किया नहीं जाता। अगर आप सोचते हैं कि महावीर को तो लोगों ने पत्थर मारे, उन्होंने बड़ी क्षमा की, बिल्कुल झूठी बात है। महावीर क्या क्षमा कर सकते हैं! क्षमा भी होती है, की नहीं जाती। महावीर जागी हुई स्थिति में हैं। कोई पत्थर मारे, गाली दे, तो इसमें करना क्या है। आपसे क्रोध होता है, उनसे क्षमा होती है—यानी उनसे क्षमा निकलती है, वह क्या करेंगे? एक फूलों भरे दरख्त पर हम पत्थर मारें तो फूल नीचे गिरेंगे और एक कांटे वाले दरख्त पर हम पत्थर मारें तो कांटे नीचे गिरेंगे। जो होता है वह निकलता है, जो होता है वह गिरता है। अब महावीर के भीतर प्रेम ही प्रेम भरा है। आप गये, आपने उनको दो गालियां दी, वे क्या करेंगे, वे प्रेम को बांट देंगे। जो देने को होगा वही तो दे सकते हैं। जो निकल सकता है, निकलता है। जीवन में चीजें निकलती होती हैं, करनी नहीं होती हैं।

तो जो लोग कहते हैं, कि महावीर ने क्षमा की, बिल्कुल झूठी बात कहते हैं। जो कहते हैं महावीर ने अहिंसा की, बिल्कुल झूठी बात कहते हैं। जो कहते हैं, बुद्ध ने करुणा की, झूठी बात कहते हैं। वस्तुतः वे चेतना की उस अवस्था में हैं जहाँ पर करुणा ही हो सकती है।

क्राइस्ट को लोगों ने सूली पर चढ़ा दिया और जब सूली पर चढ़ाकर उनसे कहा कि कोई अन्तिम बात कहनी है, तो क्राइस्ट ने कहा: 'हे परमात्मा, इनको क्षमा कर देना। ये

नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।" आप कहेंगे कि क्राइस्ट ने बड़ी क्षमा की, पर क्राइस्ट यही कर सकते थे। क्राइस्ट जिस चेतना की अवस्था में हैं उनसे यही निकल सकता था। मेरी आप बात समझ रहे हैं ? कर्म का मूल्य नहीं है, एक्शन का कोई मूल्य नहीं है, बीइंग का है, आपकी सत्ता का मूल्य है। आप कर्म को पकड़ेंगे, चक्कर में पड़ जायेंगे। आप सोचेंगे कि कर्म को बदलें, यह पाप है। इसको बदलें, इसको करें। आप कुछ नहीं कर सकेंगे। जिसके भीतर चेतना सोयी है वह कोई पुण्य कभी नहीं कर सकता है। अगर एक आदमी है, जिसकी चेतना सोई हुई है, उसको लोग कहते हैं कि वह धर्मशाला बनाये, मन्दिर बनाये। बिल्कुल झूठी बात है। क्योंकि जिसकी चेतना सोयी है, वह मन्दिर नहीं बना रहा है। वह अपने पाप के लिए स्मारक बना रहा है, अपने नाम के लिए स्मारक बना रहा है। मन्दिर नहीं बना रहा है। मन्दिर से उसे क्या मतलब ? वह जो भी बना रहा है उसमें उसकी सोयी हुई चेतना जो काम कर रही है, उसमें जरूर पाप होंगे, मेरा मानना है। सोये हुए आदमी जो भी करेंगे वह पाप है। पाप की परिभाषा मेरी जो होगी, सोये हुए आदमी से जो भी होता है वह पाप है, जागे हुए आदमी से जो भी होता है पुण्य है। अगर सोया हुआ आदमी पुण्य की नकल भी करे तो पाप है और अगर जागे हुए आदमी का कोई काम आपको पाप भी मालूम पड़े तो जल्दी निर्णय मत लेना। वह भी पुण्य होगा, वह भी पुण्य है। उससे पाप हो नहीं सकता है।

मेरी दृष्टि शायद आपको समझ में आ जाय—पाप और पुण्य के तल पर नहीं, चेतना के तल पर। सोई चेतना और जागी चेतना। जागृत आदमी और प्रसुप्त आदमी, मूर्छित आदमी। उस तल पर सारी बात है और दोनों की स्थितियां जिम्मेवार हैं। आप हैं कर्म के लिए नहीं, अपनी चेतना की अवस्था के लिए। मेरा फर्क समझ लें। ज्यादा गहरे तल पर परिवर्तन करना है, ऊपर तल पर कोई परिवर्तन नहीं होता, कर्म के तल पर कोई परिवर्तन नहीं। व्यक्तित्व का पूरे प्राणों के तल पर, पूरी आत्मा के तल पर परिवर्तन होता है।

इसलिए जब कोई कहता है कि फलां काम पाप है और फलां काम पुण्य है, तो मुझे हैरानी होती है। काम पाप और पुण्य नहीं होते। वह हो सकता कि वही काम पाप हो और वही काम पुण्य हो। यह तब हो सकता है, जब कि चेतना में भेद हो, जब चेतना बिल्कुल भिन्न हो। जागी हुई चेतना वही कर्म करे तो शुभ है, सोई चेतना से वही कर्म अशुभ है।

● संकलन : साध्वी योग गुणा, बम्बई

जो है, है

(भगवान श्री की अंतरंग वार्त्ता से)

प्रश्न : आपने कहा कि पत्थर वहीं पड़ा रहे, आगे क्यों जाय या पीछे क्यों आए ? क्या एक जगह खड़े रहना क्रांति है ?

उत्तर : असल में सवाल यह है कि यह मैं नहीं कह रहा हूं कि वह एक जगह खड़ा रहेगा। मैं यह कह रहा हूं कि अगर वह अपने स्वभाव में रह जाय। पड़े हुए का मतलब यह कि वह जो है। वह स्वभाव में होना है। जो हो वही है। यानी पत्थर आगे कब जाता है ? जब पत्थर फूल बनने की कोशिश करता है तो आगे जाता है और जब पत्थर धूल बनने की कोशिश करता है तो पीछे आता है। आगे जाता है इस आशा में कि फूल बन जाऊं, पीछे चला जाता है तो इस दुख में पड़ जाता है कि धूल न बन जाऊं। मैं कह रहा हूं कि वहीं रहने का मतलब यह है कि, पत्थर पत्थर है, न उसको फूल बनना है, न धूल बनना है और तब पत्थर की भी अपनी एक फ्लावरिंग है। तो जेल में पत्थर के भी बगीचे बना लिए हैं, उसकी भी अपनी फलावरिंग है और जब एक पत्थर अपनी पूरी शान में

पड़ा होता है तो किसी फूल से कम होता है ? और किसी पत्थर को हम छूकर देखते नहीं हाथ में उठाकर, न हम उसे प्रेम करते हैं क्योंकि हमारी पूरी कल्चर बाउण्ड है, हमारी सब कुछ बाउंड है। कभी न हम पत्थर को उठाकर हाथ में रखते हैं, न कभी हम छूते हैं, न कभी उसे आंखों से लगाते हैं, न उसके कभी स्पर्श लेते हैं। नहीं तो पत्थर भी ऐसी खबरें देगा जो फूल ने कभी नहीं दी। मेरा यह कहना है कि जो-जो है, अगर वह-वह रह जाय तो ऐसा नहीं है कि प्रगति नहीं होगी, तब भी प्रगति होगी, लेकिन वह प्रगति दूसरे की तुलना में, दूसरे की दौड़ में नहीं होगी, वह जस्ट आउट ग्रोथ होगी, वह उसके भीतर से आयेगी, फैलेगी-फैलेगी। ऐसी होगी जैसे एक पौधा बड़ा हो रहा है, एक दूसरा पौधा बड़ा हो रहा है। न तो यह पौधा बगल वाले पौधे की फिक्र करता है कि तुम ज्यादा बड़े हो गये हो तो मैं ज्यादा बड़ा हो जाऊं। वह अपना बड़ा हो रहा है, वह अपना बड़ा हो रहा है। लेकिन आदमी में बड़ी गड़बड़ है, वह बगल वाले को देख रहा है कि तुम बड़े हो गये हो मैं थोड़ा बड़ा हो जाऊं और इस सब गड़बड़ में वह जो हो सकता था वही नहीं हो पा रहा है और मजा यह है कि वह वही हो सकता था जो वह हो सकता था। वह उसकी अपनी आंतरिक नीयति थी, वह जो हो सकता था। मां-बाप बच्चे को बचपन से वह सारा का सारा जहर दे रहे हैं।

प्रश्न : आपस में कंपटीशन से अच्छा हो सकता है ?

उत्तर : इससे कभी अच्छा नहीं हो सकता। तीस बच्चे हैं, एक बच्चा पहला आयेगा। जो पहला आयेगा वह पहला होने की वजह से पागल हो जायगा और अब जिन्दगी भर पहला होने की चेष्टा में लगे रहना पड़ेगा और जिस दिन पहला नहीं हुआ उसी दिन मुसीबत में पड़ जायेगा, स्वीसाइड करेगा और यह करेगा, वह करेगा क्योंकि वह पहला नहीं आया है, वह सदा के लिए दीन हो गया। जब दो चार बार नहीं पहला आ पायेगा तो सदा के लिए हार गया, अब वह जिन्दगी भर हारेगा, सब चीजों में हारेगा। वह एक ही कोशिश नहीं कर रहा है, सारी दुनिया कोशिश कर रही है और हम सब की कोशिशें हैं। एक दूसरे की कोशिशों को काट रही हैं क्योंकि कंपीटीटिव हैं। मैं यहां बैठा हूं, तुम वहां बैठी हो तो बड़ी शांति से बात चल रही है। अभी हम इस कमरे में तय कर लें कि सबको यहां बैठना है तो फिर भी बात चल सकती है, लेकिन वह किस तरह की बात होगी अब यहां धक्का-मुक्की शुरू हो जायेगी क्योंकि उसकी टांग खींच

रहा है और जो अपनी जगह बैठा है वह अपनी जगह नहीं बैठा रह जायगा क्योंकि उसको यहां होना है। यह कमरा अभी पागल हो जायगा और हमको दिखायी नहीं पड़ रहा है कि अम्बीशन ने और कंपटीशन ने सारी दुनिया को पागल किया है। अगर मां बाप बच्चे को प्रेम करते हैं तो वह कहें पहले दूसरे का सवाल नहीं, तू जो है सो है और अच्छी शिक्षा होगी तो तीस लड़के पढ़ेंगे, तीस लड़के पास होंगे फेल होंगे लेकिन नम्बर एक नम्बर दो कोई भी न होगा। कोई जरूरत नहीं, साल भर पढ़ा दिया, वह दूसरी कक्षा में चले गये हैं। सर्टिफिकेट उनके पास यही है कि उन्होंने साल भर पढ़ा है और अगर नम्बरों का पता है तो उनके शिक्षकों को पता होना चाहिए। न बच्चों को पता होना चाहिए, न किसी को पता होना चाहिए और नम्बरों का पता सिर्फ इसलिए होना चाहिए कि अगले साल जिस बच्चे को कम नम्बर मिलें उसके साथ थोड़ी ज्यादा मेहनत की जा सकती है, और क्या मतलब है। मेरे हिसाब में तो शिक्षा की पूरी दृष्टि दूसरी है—नान कंपटीटिव और नान—अम्बीसस। लेकिन हम समझ रहे हैं बहुत अच्छा कर रहे हैं। हमारी महत्वाकांक्षाएं रह जाती हैं अधूरी। बच्चों की छाती पर चढ़कर उनको पूरी कर रहे हैं।

प्रश्न : अगर वे आगे नहीं बढ़ेंगे तो ?

उत्तर : बड़ा मजा यह है कि अगर हम ध्यान करेंगे, इस दुनिया में जिन साइंटिस्ट ने कुछ दिया है उनको आगे बढ़ने का कुछ ख्याल ही नहीं था किसी से। उनकी अपनी खुशी और अपना आनन्द है। आइंस्टीन, दुनिया आगे बढ़ेगी या पीछे हटेगी इस हिसाब से नहीं कर रहा है काम। उस आनन्द की खोज से दुनिया आगे जा रही है, पीछे जा रही है, यह दुनिया जाने। उसका आनन्द है काम।

● संकलन : *मा योग क्रांति*

कासे कहों

कासे कहों प्रभु मन की बात ।।

ये दुनिया तो दम्भ की साथी,
सांची बात इसे नहिं भाती
उलटी लगती सीधी बात
कासे कहों प्रभु मन की बात ।।

कहे बिना हिय मानत नाहीं
दुख मोरा जग जानत नाहीं
कोऊ डूबत देखि न जात
कासे कहों प्रभु मन की बात ।।

● *स्वामी अगेह भारती, जबलपुर*

द्वार पहुंच कर मैं रह जाऊं

हे प्रभु अब तो ऐसा कर दे,
मैं तुझको अर्पित हो जाऊं ।।

कितना भटका, कितना रोया,
कितना खोजा, कुछ ना पाया,
तूने दिशा दिखा दी अब, पर
सूना पथ मैं डर-डर जाऊं ।।
हे प्रभु अब तो...

पाप-पुण्य के अगणित घेरे,
कट जायें सब तेरे नेरे
फिर यह कैसी लीला तेरी
मिटते-मिटते मैं बच जाऊं
हे प्रभु अब तो...

कितने श्रम से दर तक पहुंचूं
गिर-गिर,उठ-उठ,चल-चल पहुंचूं
फिर यह कैसी दुविधा मेरी
पहुंच-पहुंच पीछे हट जाऊं
हे प्रभु अब तो...

कोई मेरी मुश्किल देखे
सुलझी-सुलझी उलझन देखे
जाने क्या है उसकी मर्जी
द्वार पहुंच कर मैं रुक जाऊं
हे प्रभु अब तो...

● *स्वामी अगेह भारती, जबलपुर*

आत्म दर्शन

जीवन का पहला अनुभव मनुष्य के इस सत्य के अनुभव से शुरू होता है कि अपने भीतर वह उसको जान सके, जिसकी मृत्यु नहीं होती।

अमोलक अमीचंद हाई स्कूल, बम्बई में भगवान रजनीश द्वारा दिनांक ९ सितंबर, १९६४ को दिया गया एक प्रवचन

प्रायः हम सभी को ऐसा प्रतीत होता है कि हम जी रहे हैं—लेकिन सच तो यह है कि वास्तविक जीवन बहुत कम लोगों को उपलब्ध होता है। जन्म तो बहुत लोगों को मिलता है किन्तु जीवन सभी को नहीं मिलता। जन्म तो आपको मिलता है, जीवन आपको पाना होता है। जन्म तो आपको निसर्ग से, प्रकृति से मिलता है, जीवन आपको साधना से उपलब्ध करना होता है।

एक साधु के पास एक व्यक्ति दीक्षित हुआ था। जो व्यक्ति दीक्षित हुआ था वह बहुत वृद्ध था। उसकी उम्र काफी थी। एक युवक ने उस वृद्ध साधु से, उस दीक्षित साधु से पूछा, "आपकी उम्र क्या है ?" उस साधु ने कहा, "अभी तो मेरी उम्र केवल वर्ष भर है।" सुनकर जो लोग बैठे थे, हैरान हुए। उसने पूछा, "वर्ष भर !" यह तो नितान्त ही असत्य था, क्योंकि वह आदमी वृद्ध था। उस वृद्ध साधु ने कहा, एक वर्ष पहले ही मुझे जीवन का अनुभव हुआ।

उसके पहले मुझे कोई जीवन-अनुभव नहीं था । मैं जी रहा था, लेकिन जीवन का मुझे कोई पता नहीं था ।

हम जी रहे हैं, यह एक बात है, हमें जीवन का अनुभव होता हो, यह बिल्कुल दूसरी बात है । जीवन के अनुभव को उपलब्ध करने के लिए ही धर्म है । जो धर्म के मार्ग से नहीं गुजरेगा उसे जीवन उपलब्ध नहीं होगा । हम करीब-करीब मृत हैं । हम करीब-करीब मरे हुए लोग हैं । इसलिए यह कह रहा हूं कि हम करीब-करीब मरे हुए लोग हैं और हम जिसे जीवन समझ रहे हैं वह मृत्यु है क्योंकि मैं जिस दिन जन्मा, जिस दिन मेरा जन्म हुआ—उसी दिन से मेरा मरना भी शुरू हो गया । मेरी मृत्यु भी उसी दिन से प्रारम्भ हो गयी है । हम जिसे जीना समझते हैं वह एक क्रमिक मृत्यु है, एक ग्रेजुअल-डेथ है जिसमें हम रोज-रोज मरते चले जाते हैं । एक दिन मृत्यु पूरी हो जाती है । जन्म पर मृत्यु का प्रारम्भ होता है । मृत्यु पर, मृत्यु की परिसमाप्ति हो जाती है । तो जिसे हम जीवन करके जानते हैं उसे जीवन करके जानना नासमझी है, उसे क्रमशः धीरे-धीरे मृत्यु करके जानना ही उचित होगा ।

हम प्रतिक्षण मरते जा रहे हैं और जो इस मरण की प्रक्रिया से चिपका है, जो इस मरण की प्रक्रिया को ही जीवन समझ रहा है वह होश में नहीं है । वह बहुत स्वप्न में है, वह बहुत निद्रा में है । वह करीब-करीब मूर्च्छित है और उसकी सारी क्रियाएं मूर्छा में चल रही हैं । **जीवन का पहला अनुभव मनुष्य के इस सत्य के अनुभव से शुरू होता है कि अपने भीतर वह उसको जान सके, जिसकी मृत्यु नहीं होती ।** और यह ठीक भी है, जीवन और मृत्यु दोनों शब्द विरोधी-शब्द हैं । जीवन की मृत्यु संभव नहीं है, मृत्यु का कोई जीवन संभव नहीं है । साधारणतः हम देखते हैं कि एक व्यक्ति जीवित था और मर गया । मैं आपसे कहना चाहूंगा, उसके भीतर जो जीवित था वह नहीं मर सकता । हम में दोनों जुड़े हैं । मनुष्य में जीवन और मृत्यु का मेल हुआ है । महावीर की भाषा में कहें, "मनुष्य में जीव का और अजीव का मेल हुआ है ।" जीवन और मृत्यु का हमारे भीतर मेल है । हम संगम हैं । हममें दोनों हैं—मृत्यु भी है और जीवन भी है । हममें वह हिस्सा भी है जो मरेगा, इस क्षण भी मरा हुआ है और हम में वह हिस्सा भी है जो जीवित है, और जीवित रहेगा और जिसकी मृत्यु सम्भव नहीं है ।

मनुष्य एक द्वैत है, एक ड्युएलिटी है । मनुष्य के भीतर दो मनुष्य हैं । मनुष्य के भीतर दो व्यक्तित्व की

पर्तें हैं। मनुष्य एक दुविधा है, मनुष्य दो है। इकाई नहीं है। मेरे भीतर इकाई नहीं है। नास्तिक की, पदार्थ-वादी की यही घोषणा है, कि मनुष्य यूनिटी है, इकाई है। उसका कहना है, मनुष्य केवल देह है। उसके भीतर कोई आत्मा, कोई चैतन्य नहीं है। उसका कहना है, मनुष्य केवल मृत्यु है, उसके भीतर कोई जीवन नहीं है। पदार्थवादी की, भौतिकवादी की यह घोषणा है कि मनुष्य केवल मृत्यु है, उसके भीतर कोई जीवन नहीं है। उसमें सब मुर्दा है, सब जड़ है, वह मैटर है। उसके भीतर कोई चैतन्य नहीं है। कोई परमात्मा उसके भीतर नहीं है। अध्यात्मवादी की यह घोषणा है कि मनुष्य यूनिटी नहीं है, मनुष्य इकाई नहीं है, मनुष्य ड्युएलिटी है, द्वैत है। मनुष्य के भीतर दो हैं। उसके भीतर कुछ है जो पदार्थ है, उसके भीतर वह भी है जो पदार्थ का अतिक्रमण करता है, पदार्थ को ट्रांसेंड करता है। **पदार्थ के पार, पदार्थ से भिन्न, पदार्थ से अलग भी उसके भीतर कुछ है। वही उसकी आत्मा है।**

तो जो अपने को शरीर मानकर समाप्त हो जायेंगे वे मृत हैं और मृत हो जायेंगे। और जो अपने भीतर उस तत्व को अनुभव करेंगे और उससे स्पंदित होंगे जो कि मृत नहीं है और कभी मृत नहीं होगा, जो कि अमृत है, उससे स्पंदित होंगे और उससे संबंधित होंगे, वे जीवन को अनुभव करेंगे।

मैंने कहा, जन्म सबको मिलता है, जीवन सबको नहीं मिलता। मृत्यु सबको मिलती है, अमृत सभी को नहीं मिलता। जो केवल जन्म पर समाप्त है उसे केवल मृत्यु मिलेगी और जिसने जीवन को उपलब्ध किया उसे अमृत भी मिलता है। अमृत को उपलब्ध करते ही जीवन आनन्द, शांति और प्रभु-सत्ता से व्याप्त हो जाता है। और मृत्यु को ही जीवन भर पकड़े रहकर, उसके ही घेरे में जीवन दुख और पीड़ा में परिणत हो जाता है। जो मृत्यु को अपना केन्द्र बनाये हुए है और जो मरणधर्मा से जुड़ा हुआ है और जो समझ रहा है कि यह मरण-धर्मा ही मैं हूं और उस मरणधर्मा के आस-पास बहुत सी मरणधर्मा वस्तुओं को इकट्ठा कर रहा है और समझ रहा है कि उनसे उसने कुछ जोड़ा और उपलब्ध किया है, वह भूल में है।

एक साधु एक गांव से गुजरता था। एक व्यक्ति ने, जो बहुत समृद्ध-शाली था, बहुत सम्पत्तिशाली था, उस साधु के पैर पकड़े और उसको कहा कि, "मेरे पास बहुत है। और तुम्हारे प्रति मेरे मन में इतना प्रेम और आदर है कि मैं चाहता हूं कि तुम्हारे लिए कुछ कर सकूं। मेरे पास बहुत है। मैं कुछ करना चाहता हूं।" उस साधु ने कहा, "सच ही करोगे ? तुम कहते तो हो तुम्हारे पास बहुत

मिलें

मुल्ला नसरुद्दीन

से—

मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखने के लिए तालाब में उतरा परन्तु भाग्य की बात, पैर रपट पड़ा और वह दो-तीन गोते खा गया। बस निकल कर वह बोला, "कसम भगवान् की ! अब जब तक तैरना पूरी तरह न सीख लूं तब तक तालाब की दिशा में पैर भी न रखूंगा।"

निश्चय ही अनेक जन्म हो गये लेकिन मुल्ला नसरुद्दीन अभी तक तैरना नहीं सीख पाया है।

क्योंकि, तैरना सीखने के लिए बिना तैरना जाने ही तालाब में उतरने का साहस आवश्यक है।

और यही धर्म के संबंध में सत्य है।

यही ध्यान के संबंध में।

और यही संन्यास के।

है, मुझे कुछ दिखायी नहीं देता। तुम मुझे बिल्कुल खाली और नग्न और भिखमंगे दिखायी देते हो।" वह हंसने लगा, वह बोला, "आप समझते नहीं। मेरे पास बहुत संपत्ति है। उस सारी संपत्ति को मैं साथ थोड़े ही लिये फिरता हूं। मेरे पास बहुत है, आप कहें, और पूरा हो जायगा।" उस ने कहा, "तुम कहते हो मान लेता हूं, विश्वास मुझे नहीं आता। तुम्हारी आंखों में झांकता हूं भीतर, तुम्हारे कुछ भी नहीं है। अभी तो तुम्हें यह भी पता नहीं है कि तुम भी हो। जिसे यह भी पता नहीं है कि वह है, उसके पास और क्या होगा। लेकिन तुम कहते हो तो माने लेता हूं। एक छोटा सा काम है, कर देना।" उसने अपने वस्त्रों से कपड़ा सीने की एक सूई निकाली और उस व्यक्ति को दी और कहा, "इसे सम्हाल कर रख लो। जब हम दोनों मर जायें तो वापस कर देना।" वह आदमी घबरा गया होगा। आप भी घबरा गये होते। कोई भी घबरा गया होता। साधु पागल प्रतीत हुआ होगा। मृत्यु के बाद सूई को लौटाना कोई पागल ही सोच सकता है। लेकिन उस व्यक्ति ने खुद ही मांगा था काम इसलिए कहा नहीं, रात भर वह सोचता रहा। मित्रों से पूछा। उनसे पूछा जो समझदार थे। लेकिन लोगों ने कहा, "पागल हुए हो ? मृत्यु के बाद सूई नहीं लौटायी जा सकती क्योंकि मृत्यु तक सूई को ले जाया जा सकता है। मृत्यु के बाद सूई को ले जाना असंभव है। माना कि सूई छोटी है, अल्प है क्षुद्र है लेकिन उसे किस मुट्ठी में बांधोगे कि मौत के पार ले जाओ। सब मुट्ठियां इसी पार रह जाती हैं।

सारी पकड़ इसी पार छूट जाती है। कुछ भी ले जाया नहीं जा सकता।" वह रात अन्धेरे में लौटा और साधु को सूई वापस दी, पैर पकड़े, क्षमा मांगी और कहा, "इसे अभी वापस ले लें, यह कहीं उधारी ऊपर न रह जाये, क्योंकि मृत्यु के बाद तो वापस नहीं कर सकूंगा। इसे वापस ले लें। मैं क्षमा मांगता हूं। यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है। मैं इसे मृत्यु के पार नहीं ले जा सकता।" वह साधु बोला, "यह तो मैं जानता था कि इसे मृत्यु के पार नहीं ले जा सकते लेकिन क्या इससे तुम्हारे मन में प्रश्न उठा कि तुम्हारे पास ऐसा क्या है जिसे तुम मृत्यु के पार ले जा सकते हो ?" वह आदमी बोला, "उसी ने तो मुझे चौंका दिया है और एकदम नग्न और भिखमंगा कर दिया है। पहली दफा मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं मृत्यु के पार ले जा सकूं, ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है।" जो अपने मरणधर्मा शरीर को सब समझेगा, वह मरणधर्मा वस्तुएं अपने पास इकट्ठी कर लेगा। उसी वस्तुओं के संग्रह को महावीर ने परिग्रह कहा है। उनको इकट्ठी कर लेना जो मृत्यु के पार न जा सकेंगी और उनमें मोह को और आसक्ति को स्थापित कर लेना परिग्रह है। जो मृत्यु के इसी तरफ छूट जायेगा उसे अपना जीवन समझ लेना परिग्रह है। जो मृत्यु की लपटों को नहीं पार कर सकता उस क्षणभंगुर को सब कुछ मान लेना परिग्रह है। वह मूर्च्छा परिग्रह है। जो व्यक्ति अपने को देह समझेगा पदार्थ समझेगा, वह अपने आस-पास पदार्थ को इकट्ठा करेगा। स्वाभाविक ही वह पदार्थ को इकट्ठा करेगा क्योंकि वह पदार्थ है और पदार्थ के इकट्ठे होने से सुख प्रतीत होगा, समृद्धि प्रतीत होगी, शक्ति प्रतीत होगी। होगा प्रतीत कि मैं कुछ हूं। कुछ मेरे पास होगा तो मुझे लगेगा, मैं कुछ हूं। इसलिए सारे जगत में दौड़ है कि मेरे पास कुछ हो। क्योंकि कुछ होने से मुझे लगेगा कि मैं कुछ हूं। जितना ज्यादा मेरे पास होगा उतना ज्यादा में हो जाऊंगा। जितना कम मेरे पास होगा उतना कम मैं हो जाऊंगा। मेरे पास कुछ भी न होगा तो मैं शून्य हो जाऊंगा।

हम सब शून्य की तरह घूमते हुए लोग हैं। जिनके भीतर तो कुछ नहीं है, लेकिन जिनके बाहर कुछ इकट्ठा है। उसी के बलबूते पर वे कुछ बने हुए हैं। किन्हीं के पास धन है, किन्हीं के पास पद है, किन्हीं के पास ज्ञान है, किन्हीं के पास त्याग है, किन्हीं के पास कुछ है, किन्हीं के पास कुछ है। उसके बलबूते पर वह बने हैं कि हम कुछ हैं, मैं कुछ हूं। भीतर एक शून्य खड़ा है और बाहर हम समृद्धि को इकट्ठा किये हैं और शून्य को दबाये हुए हैं और छिपाये हुए हैं।

लेकिन मौत शून्य को उघाड़ देगी और तब पता चलेगा, पास में कुछ भी नहीं है और तब ज्ञात होगा, एक प्रवंचना में नष्ट कर लिया अपने को। तब ज्ञात होगा, एक भ्रम में, एक स्वप्न में खो दिया अपने को। पास तो कुछ भी नहीं है। मृत्यु जिस शून्य को उघाड़ेगी, जो व्यक्ति मरने के पहले उस शून्य को उघाड़ लेता है वह जीवन को उपलब्ध हो जाता है। मृत्यु जिस शून्य को अनिवार्यतः उघाड़ देगी, जिस खालीपन को, अकेले को मृत्यु नग्न कर देगी, उसे जो अपने हाथ से मृत्यु के पहले उघाड़ लेता है वह साधु है, वह संन्यासी है, वह साधक है।

साधना का कोई और अर्थ नहीं है। जो मृत्यु उघाड़ देगी उसे स्वयं उघाड़ लेना साधना है। जो मृत्यु छीन लेगी उसे स्वयं छोड़ देना साधना है। सिर्फ उतने को बचा लेना जिसे कि मृत्यु नहीं छीन सकेगी, अपरिग्रही हो जाना है। उतने को बचा लेना, जिसे कोई नहीं छीन सकेगा, क्योंकि जिसे मृत्यु नहीं छीन सकेगी उसे फिर कौन छीन सकेगा। मृत्यु अंतिम छीनने वाला है, सबसे समर्थ छीनने वाला। अपने हाथ से अपने शून्य को उघाड़ लेना, अपने अकेलेपन को उघाड़ लेना और जान लेना कि भीतर मैं क्या हूं। जो मेरे पास है उसके भ्रम में मैं न रहूं। **जो मैं हूं, वही मेरा है। जो मेरे पास है वह मेरा नहीं है। वह किसी का भी नहीं है, जब मैं नहीं था तब भी वह था, जब मैं नहीं रहूंगा तब भी वह रहेगा। जो मेरे पास है, जब मैं नहीं रहूंगा तब भी रहेगा, जब मैं नहीं था तब भी था—वह मेरा नहीं हो सकता है। मैं ही केवल मेरा हो सकता हूं।**

इस 'मैं' को जानना होगा जो कि मेरा अकेला साथी है जीवन में, मृत्यु में, जन्म में, मरण में, सुख में, दुख में। जो हर परिवर्तन में मेरे साथ है और अपरिवर्तित है। इस 'मैं' को ही जानना होगा। इसको जो नहीं जानता वह भ्रांति में है, भूल में है। इसे जो जानता है वह ज्ञान को और आनन्द को उपलब्ध हो जाता है। इस 'मैं' को जानना होगा—दो ही रास्ते हैं। एक रास्ता है, उसे जानें हम जो हमारे पास है। जो हमें घेरे हुए है। जो हमारे चारों तरफ मौजूद है। **जो हमारे चारों तरफ मौजूद है उसका नाम संसार है। मेरे चारों तरफ जो विस्तीर्ण है, अगर मैं अपने को केन्द्र मान लूं तो मेरे चारों तरफ परिधि पर जो विस्तीर्ण है, अनंत अनंत लोकों तक वह संसार है।** जो मेरे चारों तरफ है उसे जानने का उपाय भी विज्ञान करता है, लेकिन वही सब कुछ नहीं है, मैं भी तो हूं। मेरे चारों तरफ जो कुछ है वही सब कुछ नहीं है, मेरे भीतर भी कुछ है, उसे जानने का उपाय धर्म करता है। केन्द्र को

जानने का उपाय धर्म है, परिधि को जानने का उपाय विज्ञान है। आज जगत में केवल विज्ञान रह गया है। आज जगत में धर्म नहीं है और धर्म के नाम से जो चल रहा है वह बिल्कुल ही धर्म नहीं है। इस सच्चे धर्म के अभाव में हमारे पास सब है, केवल हमको छोड़कर। इस धर्म के अभाव में हम सब जानते हैं, केवल अपने को छोड़कर। इस धर्म के अभाव में हम सब इकट्ठा कर लेंगे और स्वयं को खो देंगे और इस इकट्ठा करने का क्या मूल्य हो सकता है, जिसकी कीमत में स्वयं को खो देना पड़ता हो। महावीर ने सब छोड़ा, बुद्ध ने सब छोड़ा। सब छोड़ा इसलिए कि अगर 'स्व' मिल जाये तो सब छोड़कर भी सस्ता सौदा हुआ। सस्ता इसलिये हुआ कि वह अकेली सम्पत्ति है जो छीनी नहीं जा सकती और वह अकेला जानना है जो मनुष्य को अमृत से, अनंत से, अनादि से जोड़ देता है। और वह अकेला जानना है जो जीवन में प्रवेश देता है। उसके आसपास मृत्यु है, मेरे चारों तरफ मृत्यु है। इतना और मुझे जान लेना है कि मेरे भीतर तो मृत्यु नहीं है। मेरे चारों तरफ मृत्यु है, यह मैं जानता हूं, रोज मरते देखता हूं दरख्तों को, रोज मरते देखता हूं पशुओं को, पक्षियों को, रोज ही मरते देखता हूं, प्रियजनों को, अप्रियजनों को। मेरे चारों तरफ जो भी हैं, मित्र हैं, शत्रु हैं। जो भी मेरे चारों तरफ हैं उन सबको मरते देखता हूं। चारों तरफ मृत्यु परिव्याप्त है। कहीं जीवन तो दिखायी नहीं देता। एक केन्द्र और जान लेने का है कि मेरे भीतर भी तो कहीं मृत्यु व्याप्त नहीं है ? वहीं भर मृत्यु अभी तक नहीं देखी गयी है। चारों तरफ मृत्यु ही मृत्यु है। शायद हम मृत्यु के एक सागर में खड़े हैं। कोई ऐसा बिन्दु नहीं है बाहर जो न मर जाता हुआ देखा गया हो। सब बिन्दु बाहर मर जाते और टूट जाते हैं। बाहर कुछ भी थिर नहीं है, बाहर कुछ भी अमृत नहीं है, बाहर कोई भी शाश्वत जीवन नहीं है। अब एक बिन्दु और शेष रह जाता है कि मैं उसे भीतर और देख लूं। अगर वहां भी मृत्यु हो तो जीवन मीनिंगलेस है, यह सारी व्यर्थ की कथा है।

शेक्सपीयर की एक पंक्ति है—"टेल टोल्ड बाई एन इडियट फुल आफ फ्यूरी एंड नायज सिगनीफाइंग नथिंग।" अर्थात् यह एक मूर्ख के द्वारा कही गयी कथा है जिसमें शोरगुल तो बहुत है, अर्थ कुछ भी नहीं। अगर वहाँ भीतर भी मृत्यु है तो फिर सिर्फ अज्ञानी जी सकते हैं, ज्ञानी अपने को तत्क्षण समाप्त कर लेंगे। फिर कोई माने नहीं है, फिर कोई अर्थ नहीं है। भीतर जानना बहुत ही जरूरी है इसलिए कि अगर वहां

ज्ञात हो जाये कि मृत्यु है तो सब जीना फिर व्यर्थ है। और अगर वहां ज्ञात हो जाये कि मृत्यु नहीं है तो सारा जीना सार्थक हो जायेगा। और अगर वहां ज्ञात हो जाये कि मृत्यु नहीं है तो सारा जीना सार्थक हो जायेगा। और मुझे अगर अपने केन्द्र के भीतर ज्ञात हो जाये कि मृत्यु नहीं है तो मैं सबके केन्द्र के भीतर जानूंगा कि मृत्यु नहीं है। मृत्यु केवल दीखती है, मृत्यु है नहीं। अगर मुझे अपने भीतर दिख जाय, अगर मैं अपने भीतर जान लूं कि मेरे भीतर एक बिन्दु है जो नहीं मरता है। जो भी मरते हैं, मरे हैं, मरेंगे, मर सकते हैं; उनके भीतर कुछ है जो नहीं मर सकता है। तब मृत्यु दीखती है किन्तु अमृत पीछे खड़ा है; यह स्पष्ट बोध होता है। वस्तुतः धर्म का सम्बन्ध उस अमृत के बोध से है।

धर्म का सम्बन्ध आपके शास्त्रों से, ग्रन्थों से, मंदिरों से और मस्जिदों से नहीं और धर्म का सम्बन्ध इन व्यर्थ के विवेचनों से भी नहीं है कि ईश्वर है या नहीं, कि जगत को किसने बनाया, कि कर्म होता है या नहीं। धर्म का इन सारी चीजों से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म का तो एक ही चीज से सम्बन्ध है कि इस मृत्यु के बीच कुछ अमृत है या नहीं और अगर उस अमृत का पता चल जाये तो आत्मा भी है और परमात्मा भी है और फिर सब है। और अगर उस अमृत का पता न चले और ज्ञात हो जाये कि वहां मृत्यु है तो न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई धर्म है, फिर कुछ भी नहीं है। फिर हमारे सारे पूजा-गृह, और हमारी सारी आराधनाएँ और हमारे सारे शास्त्र और हमारे सारे धर्म के क्रियाकाण्ड, स्वप्न में की हुई निरर्थक बातें हैं। इनमें फिर कोई अर्थ नहीं रह जाता। उस बिन्दु को जानना है जो मैं हूं, जो मेरे भीतर है, उससे हमें परिचित होना है।

कैसे उससे हम परिचित हों? जो हमारे बाहर है उससे तो हम परिचित हो जाते हैं, दीखता है परिचित हो जाते हैं। दीखता है, सब दिखायी पड़ रहा है। एक मैं ही अकेला हूं जो मुझे दिखायी नहीं पड़ता हूं। दूसरे को देखा जा सकता है, स्वयं को देखा भी कैसे जा सकेगा? जो देखा जा सकेगा वह तो देखने से ही दूसरा हो जायेगा। सब दीखना दूसरे का हो सकता है, स्वयं का दीखना कैसे होगा? सच तो यह है कि स्वयं का दीखना नहीं हो सकता है। आत्मदर्शन शब्द लगता तो अच्छा है, है झूठा। आत्मदर्शन हो नहीं सकता। सब दर्शन "पर-दर्शन" है। सब देखने में दूसरा दिखायी पड़ता है। देखना मात्र दूसरे का होता है, तब फिर आत्मदर्शन का

क्या अर्थ होगा ? स्वयं को कैसे देखियेगा आप ? क्योंकि देखेंगे तो दो हिस्सों में टूट जाइयेगा—जो देख रहा है और जो दिखायी पड़ रहा है। जो देख रहा है उसको कैसे देखियेगा ? उसे तो नहीं देखा जा सकता। तो फिर क्या आत्मदर्शन नहीं होगा ? क्या स्वयं का दीखना नहीं हो सकता है ? स्वयं का दीखना जरूर हो सकता है किन्तु उस अर्थ में नहीं हो सकता है जिस अर्थ में दूसरे का देखना होता है। दूसरे का दर्शन होता है। बहुत भिन्न अर्थों में स्वयं का परिचय होता है। वह उस क्षण होगा जब आपको कुछ भी दिखायी न पड़ रहा हो और आप हैं। जब आपको कुछ भी दिखायी नहीं पड़ रहा और आप हैं तो 'जस्ट सीइंग' की हालत, जब आप केवल देख रहे हैं और दिखायी कुछ भी नहीं पड़ रहा, तो उसी क्षण आपको स्वयं का अनुभव होगा।

एक साधु का मुझे स्मरण आता है। एक गांव के किनारे एक पहाड़ी की टेकरी पर खड़ा है। उसके कुछ मित्र पास से निकलते हैं, सोचते हैं कि वह वहां क्या करता होगा। किसी ने कहा, कभी-कभी उसकी गाय खो जाती है, उसे खोजता है। किसी ने कहा कभी-कभी कोई मित्र साथ होते हैं, पीछे छूट जाते हैं उनकी प्रतीक्षा करता है। किसी ने कहा, मुझे तो ऐसा नहीं मालूम होता, न प्रतीक्षा मालूम होती उसकी आंखों में, न खोज मालूम होती है, लगता है वह प्रभु के चिन्तन में लीन खड़ा है। यह तीनों तय न कर सके कि वह साधु वहां क्या करता होगा। वे उसके करीब गये, और निकट पहुंचे। उनने उससे पूछा "क्या आपकी गाय खो गयी है, उसे देखते हैं ?" उस साधु ने कहा, "नहीं, अपना तो कुछ भी नहीं है जो खो सके।" दूसरे ने पूछा, "आप किसी मित्र की प्रतीक्षा करते हैं ?" उस साधु ने कहा, "अपना न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। न अपने कोई आगे है, न अपने कोई पीछे है, जिसकी प्रतीक्षा हो सके।" उस तीसरे व्यक्ति ने सोचा, अब तो निश्चित ही मेरी बात ठीक होगी। उसने कहा, "आप ईश्वर का चिन्तन कर रहे हैं ?" उस साधु ने कहा, "नहीं, कोई ईश्वर नहीं है जिसका चिन्तन किया जा सके। और सब चिन्तन व्यर्थ है।" उन तीनों ने इकट्ठा पूछा, "आप क्या कर रहे हैं, फिर ?" उसने कहा, "मैं कुछ कर नहीं रहा, मैं केवल हूं। मैं कुछ कर नहीं रहा, मैं केवल मौजूद हूं। उसने कहा, 'आई एम जस्ट स्टेंडिंग'—मैं तो बस खड़ा हुआ हूं, कुछ कर नहीं रहा।"

जब भी आप कुछ कर रहे होंगे अपने से बाहर होंगे। जब भी आप

कुछ कर रहे हैं, दूसरे से संबंधित होंगे। जब आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं तब आप अपने भीतर होंगे, अपने से संबंधित होंगे। एक ऐसी घड़ी, जब आप कुछ कर नहीं रहे, और कुछ सोच नहीं रहे और कोई विचार नहीं हो रहा, उस घड़ी आप बीइंग से, उस अथेंटिक बीइंग से, उस सत्ता से संबंधित होंगे जिसको महावीर ने आत्मा कहा है। और वहां आप जानेंगे, वहाँ आपको पहली दफा ज्ञात होगा, मृत्यु नहीं है। इस स्थिति का नाम, जब आप कुछ भी नहीं कर रहे और केवल हैं—इसे थोड़ा समझ लें।

जब आप कुछ भी नहीं कर रहे और केवल हैं। निश्चित ही, मैं चलता हूं, इसका अर्थ है कि मैं चाहूं तो न भी चलूं। निश्चित ही मैं चलता हूं। इसका अर्थ है कि मैं चाहूं तो न भी चलूं। मैं बोलता हूं, इसका अर्थ है कि मैं चाहूं तो मैं न भी बोलूं। मैं किसी को प्रेम करता हूं, इसका अर्थ है कि मैं चाहूं तो किसी को प्रेम न भी करूँ। मैं हिलता-डुलता हूं, मैं चाहूं तो न भी हिलूं-डुलूं। मैं जो भी क्रिया करता हूं, चाहूं तो उस क्रिया को न भी करूं। निश्चित ही मैं क्रियाओं से अलग हूं इसलिये चाहूं तो क्रिया कर सकता हूं और चाहूं तो न करूँ। मैं बोलने से अलग हूं इसलिए चाहूं तो बोलता हूं और चाहूं तो अबोला हो जाऊँ, न बोलूं। मेरी सत्ता मेरी क्रियाओं से पृथक है इसलिए मैं क्रियाओं को बदल लेता हूं। हम क्रियाएं तो रोज

अन्तस्-स्फुरण

पांच पुष्प

★

जीना भी अपने संग
मरना भी अपने संग
नहीं कोई साथ
सदा खाली अपने हाथ
क्यों न भर लें—
इन हाथों को स्वयं से ही !

★★

दर्पण नहीं—जिनका मन
दुःखी होंगे ही वे
क्योंकि वे हैं 'फोटो प्लेट'
की भांति
जिस पर दूसरा-
'एक्सपोजर' नहीं होता !

★★★

जैसे हो—वैसे रहो
करो कुछ नहीं
जो है—सो है
अभी और यहीं
तुम वही हो
तत्वमसि
अहम् ब्रह्मास्मि
क्या नहीं ?

★★★★

पशु है सरल, लेकिन मूर्छित
मनुष्य है जटिल, लेकिन अमूर्छित
और वहां शुरू होता है—
परमात्मा
जहां—सरलता है और
अमूर्च्छा भी
या कहें—
अमूर्छित सरलता का नाम ही
परमात्मा है
और ये हो सकता है—आदमी में
साक्षी से—
जागरूकता से—
समझ से—
निर्विचार बुद्धि से—
क्यों समझे—मेरे मित्र !

★★★★★

मित्र नहीं
अब मैत्री खोजनी है
मित्र हैं बाहर
और मैत्री है भीतर !

● *स्वामी चैतन्य भारती*
दिल्ली

[भगवान श्री के अंतरंग उद्‌बोधनों पर आधारित]

बदलते रहते हैं। एक क्रिया करते हैं फिर दूसरी करते हैं, फिर तीसरी करते हैं, लेकिन कभी हम यह ख्याल नहीं करते। इसी ख्याल से योग का जन्म हुआ कि क्या हम उस घड़ी में भी हो सकते हैं जब हम कोई भी क्रिया न करें। मैंने आपसे कहा, हम क्रियाएँ बदल देते हैं, यह इस बात की सूचना है कि हम चाहें तो क्रियाएं न भी करें, हम एक क्रिया से दूसरे पर चले जाते हैं, दूसरी से तीसरी पर चले जाते हैं।

योग इस विचार से जन्मा कि क्या ऐसी भी घड़ी हो सकती है जब मैं एक क्रिया से तो जाऊं लेकिन दूसरे पर न जाऊं। मैं सारी क्रियाओं से तो चला जाऊं, कोई क्रिया तो न रह जाय करने को और मैं बिल्कुल अकेला रह जाऊं। मैं रहूं और मैं कुछ करता हुआ न रहूं। इस घड़ी का नाम समाधि है, इस घड़ी का नाम सामायिक है, इस घड़ी का नाम ध्यान है। जब क्रिया तो कोई भी नहीं है, मात्र आप ही अकेले रह गये हैं। अपने आत्यंतिक अकेलेपन में, अपनी निपट इकाई में आप अकेले रह गये हैं। जब तक क्रिया होती है, शरीर का सहयोग होता है। बिना शरीर के सहयोग के क्रिया नहीं हो सकती है। इसलिए क्रियाओं के बीच कभी आप आत्मा को नहीं जान सकते, शरीर को ही जानेंगे।

जब तक क्रिया है तब तक आप शरीर को ही जानेंगे क्योंकि सब क्रिया शरीर से होती है। और जब तक आप क्रियाओं को ही जीवन समझेंगे

तब तक आप मृत ही रहेंगे क्योंकि क्रियाएँ सब शरीर से होती हैं और सब क्रियाएं मरणधर्मा हैं। सब क्रियाएं मर जायेंगी, सब क्रियाओं के फल मर जायेंगे। उसे जानना होगा, जो शरीर से नहीं होता। वह अक्रिया की स्थिति है जब आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं। केवल हैं। उस क्षण में, जब आप हैं, सारी इंद्रियां शिथिल हैं और शून्य हैं। कोई इंद्रिय सक्रिय नहीं है। सारा शरीर मृत है। जैसे है ही नहीं। **उस घड़ी में आपको उसका पता चलेगा जो शरीर नहीं है।**

महावीर ने या बुद्ध ने या क्राइस्ट ने जिस आत्मा की बात कही है, वह कोई दार्शनिक धारणा नहीं है। वह कोई ऐसी बात नहीं है कि किन्हीं विचारकों ने तय किया कि आत्मा होनी चाहिये और कुछ तर्क दिये, कुछ आर्गुमेंट दिये, कुछ प्रमाण दिये और तय कर दिया कि आत्मा जरूर होनी चाहिए। आत्मा कोई तार्किक धारणा नहीं है, कोई तार्किक निष्पत्ति नहीं है यह एक अनुभव से निकला हुआ फल है। यह एक अनुभव है। महावीर को या बुद्ध को या क्राइस्ट को उसका अनुभव हुआ, और करोड़ों लोगों को इसका अनुभव हुआ है। जिन लोगों ने भी साहस किया है क्रिया को छोड़ देने का, जिन्होंने भी शून्य होने का साहस किया है, जिन्होंने जीते जी पूरी तरह मरने का साहस किया है उन्होंने उसका अनुभव कर लिया है। जो मृत्यु से डरते हैं वे धर्म को अनुभव नहीं कर सकते। साधारणतया तो मृत्यु से डरने वाले लोग ही धार्मिक देखे जाते हैं। और जैसे-जैसे मृत्यु करीब आने लगती है लोग बूढ़े होने लगते हैं, लोग धार्मिक होने लगते हैं। मृत्यु से डरने वाला कोई भी धार्मिक नहीं हो सकता। मृत्यु से भयभीत धार्मिक नहीं हो सकता। धर्म बड़े अभय में, बड़े साहस में, बड़े दुस्साहस में घटित होता है। मृत्यु से डरने वाला धार्मिक कैसे होगा ?

धार्मिक तो वह हो सकता है जो मृत्यु के पहले मृत्यु को अनुभव करने का साहस रखता हो। मृत्यु के पहले मर जाने की प्रक्रिया जान ले। और मरकर देख ले, पूरी तरह जब सब उसके भीतर मरा हुआ पड़ा होगा तब उसे ज्ञात होगा कि एक तत्व मेरे भीतर अब भी जाग्रत है, अब भी जीवित है जो मरा हुआ नहीं है।

सब मेरे भीतर मरा हुआ पड़ा है। सारी देह मृत मालूम होती है, सारा मन निष्प्राण निश्चित मालूम होता है। और तब भी मेरे भीतर कुछ है, कोई दीप, कोई ज्योति जो जीवित है, और जिसे बुझाना, मिटाना असम्भव है।

जब उसे यह अनुभव होगा तब वह सुनिश्चित रूप से जीवन से संयुक्त हुआ और उसने जाना कि मैं आत्मा हूं और उसने जाना कि मैं देह नहीं हूं। मनुष्य देह और आत्मा का जोड़ है। लेकिन आप ? आप आत्मा हैं। मनुष्य आत्मा और देह का जोड़ है लेकिन आप ? आप आत्मा हैं। जिस क्षण आप जानेंगे कि मैं आत्मा हूं उसी क्षण आप मनुष्य नहीं रह जाते। आप मनुष्य से ऊपर उठ जाते हैं। आप मनुष्य से भिन्न हो जाते हैं।

यह भी न जानना कि मैं देह हूं, पशु होना है। यह जानना कि मैं देह हूं, मनुष्य होना है। यह जानना कि मैं देह भी नहीं, उसके ऊपर कुछ हूं, दिव्य हो जाना है। यह जानना ही नहीं कि मैं देह हूं। यह पशु का लक्षण है। यह जानना कि मैं देह हूं यह मनुष्य का लक्षण है। यह जानना कि मैं देह से ऊपर कुछ हूं, दिव्य हो जाना है।

तीन रास्ते हैं—एक पशु का रास्ता है, एक मनुष्य का रास्ता है और एक दिव्यता का रास्ता है। किसमें हम सम्मिलित होना चाहते हैं, किसमें हम प्रविष्ट होना चाहते हैं यह हमारे चुनाव और हमारे संकल्प पर है। मैंने कहा, जिस क्षण उसका बोध हो जायेगा जो मेरे भीतर अमृत है, उस दिन आप धार्मिक हो जायेंगे। पैदाइश से कोई धार्मिक नहीं होता। इस भ्रम में कोई न रहे कि कोई जैन घर में पैदा हुआ तो जैन हो गया। अगर यह बात इतनी सच्ची होती कि कोई आदमी जैन घर में पैदा होने से जैन हो जाय और कोई आदमी मुसलमान के घर में पैदा होने से मुसलमान हो जाय तो धार्मिक होना बिल्कुल ही सस्ती बात होती, वह पैदाइश की बात होती। कोई पैदाइश से धार्मिक नहीं हो सकता क्योंकि धर्म का कोई सम्बन्ध आपकी खून और हड्डियों से नहीं है और आपकी मांस और मज्जा से नहीं है। एक अधार्मिक और एक धार्मिक आदमी के शरीर अगर काटे जायं तो उनके खून और मांस और मज्जा से तय न हो सकेगा कि कौन धार्मिक था और कौन अधार्मिक था। जन्म तो केवल देह का है। उस देह के जन्म से कोई धार्मिक नहीं होता। इसलिए यह भ्रम छोड़ दें अपने मन से कि कोई किसी धर्म में पैदा हो गया है तो धर्म का हो गया है। धर्म में कोई पैदा नहीं होता। धर्म में तो स्वयं के प्रयास से ही प्रवेश करना होता है। धर्म में अपने आप कोई पैदा नहीं होता। धर्म को तो अपने भीतर पैदा करना होता है। आपका जन्म धर्म में नहीं हो सकता। धर्म का जन्म आप में हो सकता है। आप आमंत्रित कर सकते हैं धर्म को। धर्म का जन्म इस बोध से होता है कि आपके भीतर कोई नित्य तत्व

उपस्थित है, मौजूद है। जब तक यह बोध न हो तब तक कोई व्यर्थ की वंचना में न पड़े कि वह धार्मिक है। और किन्हीं सस्ते उपायों से, मंदिर की पूजा से, कि दो-चार पैसे दान कर लेने से, कि वर्ष में कभी दो-चार दिन उपवास कर लेने से—कोई इस झूठे दम्भ को न पा ले कि वह धार्मिक हो गया। ये दम्भ को पालने के बड़े सस्ते उपाय हैं। इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। **धार्मिक होना बड़े दुस्साहस की, बड़ी हिम्मत की, बड़े प्रयास की, बड़ी सतत चेष्टा की बात है।** धार्मिक होना एक बड़ी उपलब्धि है। और वह उपलब्धि तभी संभव हो सकती है जब इस मिट्टी की देह के भीतर उसका बोध हो जाये जो कि मिट्टी नहीं है। इस मिट्टी के दिये के भीतर उसका बोध हो जाये जो ज्योति है तो आप धार्मिक हो जायेंगे। तो आप धार्मिक जीवन में अग्रसर हुए, उस धारा में आपन्न हुए, उस स्रोत में समाविष्ट हुए, जाग्रत पुरुषों की उस परम्परा का अंग बनें जिसकी धारा अनंत काल से चली आ रही है। उस दिन आप धार्मिक होकर एक ही साथ सब हो जायेंगे—एक ही साथ सब हो जायेंगे—धार्मिक होकर आप क्रिश्चियन हो जायेंगे क्योंकि वह करुणा जो क्राइस्ट में है आप में उत्पन्न हो जायेगी। धार्मिक होकर आप जैन हो जायेंगे, क्योंकि वह जैनत्व, वह विजय इंद्रियों पर और शरीर पर आप में घटित हो जायेगी जो जैन में होनी चाहिये और आप इस्लाम के हिस्से हो जायेंगे और वह शांति और भ्रातत्व आप में पैदा हो जायेगा। उस ज्योति के अनुभव से, जो मनुष्य में होना चाहिए। जो आदमी धार्मिक है उसी क्षण सब धर्म उसके हो जाते हैं, क्योंकि अनेक कोई धर्म नहीं है, एक ही धर्म है। सारे धर्म उसके हो जायेंगे। अगर कोई क्राइस्ट से पूछे कि क्या महावीर क्रिश्चियन हैं? तो मैं समझता हूं क्राइस्ट कहेंगे, उनसे बेहतर क्रिश्चियन खोजना कठिन है। अगर कोई महावीर से पूछे कि क्या क्राइस्ट जैन हैं? तो महावीर कहेंगे, उनसे बेहतर जैन को खोजना मुश्किल है।

जो भी आदमी धार्मिक है वह तत्क्षण सब धर्मों का हो गया। सब धर्मों का इसलिए हो गया कि सब कोई धर्म नहीं है, धर्म एक ही है। **उस शाश्वत चैतन्य को अनुभव कर लेना धर्म है, उसके अनुभव के बाद जीवन अपने आप धार्मिक हो जाता है। धार्मिक होने से उसका अनुभव नहीं होता, उसके अनुभव होने से जीवन धार्मिक हो जाता है।** जो उस चैतन्य को अनुभव करेगा, उसे असत्य बोलना असंभव हो जायेगा। असत्य किससे बोलेगा? अपने को ही सभी दीपकों के भीतर जलता हुआ अनुभव

करेगा। असत्य किससे बोलेगा? अपने को ही सबके भीतर प्रतिबिम्बित और प्रतिफलित पायेगा। अपनी ही ध्वनि को सारे घरों में गूंजता हुआ अनुभव करेगा। अपने को ही उपस्थित पायेगा अनेक-अनेक रूपों में। झूठ, असत्य किससे बोलेगा? परिग्रह किसलिए करेगा? अब जानता है कि अपनी सुरक्षा के लिए किसी साधन की, किसी सामग्री की जरूरत नहीं है क्योंकि जानता है कि अपनी कोई असुरक्षा, अपनी कोई इनसिक्योरिटी ही नहीं है। अब जानता है कि अपनी रक्षा की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि भीतर जो है वह स्वयं रक्षित है और अपनी प्रतिष्ठा की कोई जरूरत नहीं क्योंकि भीतर जो है वह स्वयं प्रतिष्ठित है। अब वह कैसे परिग्रह करेगा और किसलिए परिग्रह करेगा? अब ब्रह्मचर्य से कैसे भरेगा, किसके प्रति भरेगा सभी तरफ वही है, सभी तरफ। शायद उसके लिए करीब-करीब सारी देहें आइने और दर्पण बन गयी हैं जिनमें वह अपने को ही देखता और उपलब्ध पाता है। ऐसा व्यक्ति जिसने आत्मा को अनुभव किया, अनिवार्यतया उसके जीवन में अहिंसा और सत्य के, प्रेम के, करुणा के, अपरिग्रह के, ब्रह्मचर्य के फूल अपने आप पैदा हो जायेंगे। धर्म की अनुभूति उसको चारों तरफ जीवन में धार्मिक बना देगी। इनकी चेष्टाएं नहीं करनी होती हैं। अहिंसा और सत्य और प्रेम तो स्वयं उत्पन्न होते हैं चेष्टा से आते भी नहीं और चेष्टित प्रेम का मूल्य भी क्या होगा? वह अभिनय ही तो होगा। अगर मैं कोशिश करूं आपको प्रेम करने की तो वह अभिनय होगा। मुझसे प्रेम बहे, वह वास्तविक होगा। अहिंसा चेष्टित हो तो मिथ्या होगी, अहिंसा सहज प्रवाहित हो तो वास्तविक होगी। सत्य चेष्टित हो, झूठा होगा। अपने आप सहज स्पंदित हो, वास्तविक होगा।

जीवन में धार्मिकता होगी, अगर भीतर आत्मा का अनुभव होगा। आत्मा का अनुभव जीवन का अनुभव है। आत्मा को जानना जीवन को जानना है। और जो उसे जान लेगा, उसके जीवन में संगीत ही संगीत और आनन्द ही आनन्द और नृत्य ही नृत्य व्याप्त हो जायेगा।

उसके भीतर कहीं दुख की कोई प्रतिध्वनि भी नहीं सुनायी पड़ेगी। यह जो मैं कह रहा हूं आपसे यह ऐसे ही नहीं कह रहा हूं कि मुझे कोई यह विचार मालूम होता है। ऐसे ही नहीं कह रहा हूं कि यह कोई अच्छी बात मालूम होती है। या कोई तार्किक बात मालूम होती है। इतना साफ मुझे दीखता है कि इससे ज्यादा साफ और कोई चीज नहीं दीखती है। आप यहां मौजूद हैं। आपकी देह जितनी मौजूद मालूम होती है, उससे

कहीं ज्यादा वह ज्योति मालूम होती है जिसकी मैं बात कर रहा हूं। आपकी आंखों से, आपके स्पंदन से, आपकी सारी हरकतों से उस जीवन का अनुभव मालूम होता है जो भीतर मौजूद है। और एक बार भी आपकी देह पारदर्शी हो जाय और एक दफा ट्रांसपरेंट हो जाये तो हम उसके भीतर झांक सकेंगे। यह सारा जगत जीवन की ज्योतियों से भरा हुआ अनुभव मालूम होता है। जो अपने भीतर जीवन को जान लेगा वह सब तरफ जीवन को अनुभव कर लेगा। इसी जीवन की स्वीकृति महावीर की अहिंसा में प्रगट हुई है।

अहिंसा का अर्थ है, मैंने सबके जीवन को स्वीकार कर लिया। हिंसा का अर्थ है मैं किसी के जीवन को स्वीकार नहीं करता और अपने जीवन के लिए उसको समाप्त करने को राजी हूं। अहिंसा का अर्थ है, मैंने सबके जीवन को स्वीकार कर लिया, सबके भीतर जीवन का मुझे अनुभव हुआ। आत्म-अनुभव का परिणाम अहिंसा है।

जीवन अनुभव हो सकता है क्योंकि है। क्योंकि मौजूद है। सिर्फ देह से थोड़ा सरकना होगा। देह से थोड़ा पीछे आना होगा। धारा थोड़ी उल्टी बहानी होगी। जीवन भर हम देह की तरफ बहते हैं। साधना में हमें देह से चैतन्य की तरफ प्रवाहित होना होगा। जो चीजें हमें जड़ता की तरफ ले जाती हैं उनसे मुक्त करना होगा, और जो चैतन्य की तरफ ले जाती हैं उनकी तरफ प्रवाहित होना होगा। अभी हम देह की तरफ प्रवाहित हैं, साधना में हमें चैतन्य की तरफ प्रवाहित होना होगा। और हमें यह बोध करना होगा जिससे चैतन्य जगता है और वह छोड़ देना होगा जिससे जड़ता आती है।

आप कभी देखें, या अनुभव करें, किन-किन चीजों से आपके भीतर चैतन्य जगता है। और किन-किन चीजों से आपके भीतर जड़ता आती है। जिन-जिन चीजों को धर्मों ने पाप कहा है वह आपके भीतर जड़ता को पैदा करते हैं। जिन-जिन चीजों को धर्म ने पाप कहा है वे आपके भीतर, आपके शरीर को प्रभावित करते हैं और आपकी चेतना को विलुप्त करते हैं। और जिन-जिन चीजों को धर्म ने पुण्य कहा है वे आपके भीतर चैतन्य को आविष्कृत करते हैं और जड़ को विस्मृत करते हैं।

उदाहरण के लिए—आप क्रोध में होते हैं तब आप जड़ हो जाते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं। जब आप शांति में होते हैं तब आप चैतन्य में हो जाते हैं। जड़ता से, मूर्छा से मुक्त हो

जाते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी की हिंसा करता है, हत्या करता है तब बिलकुल जड़ और मूर्छित हो जाता है। तब अपने वश में, अपने होश में नहीं होता है। और जब कोई व्यक्ति किसी को बचाने के लिए अग्नि में कूद पड़ता है तब वह बड़े चैतन्य के अनुभव को उपलब्ध होता है। जब भी जो जो चीजें आपके भीतर चैतन्य को विकसित करती हैं और प्रतिष्ठित करती हैं, उनका निरन्तर प्रयोग करने से धीरे धीरे आपका प्रवाह शरीर से चेतना की तरफ होता है। एक दिन स्थिति आ जाती है कि आप देह में होते हैं, लेकिन विदेह हो जाते हैं। देह होती है, लेकिन आपको देह का कोई पता नहीं होता है।

एक छोटी सी घटना और मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा। एक साधु का मुझे स्मरण आता है। उस के आश्रम में एक युवक दीक्षित हुआ। तीन वर्ष बीते, उस साधु ने उसकी तरफ आंख भी उठाकर नहीं देखा। जब भी वह आकर कुछ पूछता, साधु आंख नीची कर लेता। कुछ भी पूछता हां और ना में उत्तर दे देता। कभी बात आगे नहीं बढ़ाता। युवक बहुत हैरान था। सबसे बात करता, सबकी तरफ आंख उठाता। इसकी तरफ ही क्या बात थी। आंख भी न उठाता, आंख से कभी देखता भी नहीं। तीन वर्ष बीते, एक दिन युवक बगीचे से निकलता था। वह साधु अपनी कुटी में था। उसने आंख उठाकर युवक को भर आंख देखा, वह तो कृत-कृत्य हो गया। वह तो प्रफुल्लित हो गया। लेकिन जैसे ही वह प्रफुल्लित हुआ, साधु की आंख वापस नीचे झुक गयी। युवक बहुत हैरान हुआ। लेकिन हैरान ही हो सकता था। फिर तीन वर्ष बीते। उस साधु ने उसे आंख उठा कर नहीं देखा। तीन वर्ष बाद वह तो धीरे धीरे भूल भी गया था, जो उसकी आदत का एक हिस्सा हो गया था। एक दिन उसने देखा, साधु उसे देख कर मुस्कराया है। एकदम से अवाक रह गया कि वह आदमी छः वर्षों के बाद मुस्कराया, पहली दफा सम्बन्ध जाहिर किया। पहली दफा स्वीकृति दी है, पहली दफा प्रेम का नाता दिया है। वह अवाक रह गया कि आज यह सम्भव कैसे हुआ। छः वर्ष अन्धेरी रात के बाद अचानक यह सूरज कैसे। वह अवाक खड़ा था कि साधु की मुस्कराहट बुझ गई। फिर और तीन वर्ष बीते। न उसने देखा, न वह मुस्कराया ही। वह युवक धीरे धीरे भूल ही गया। भूल ही गया कि साधु भी है। भूल ही गया कि कोई मुस्कराता नहीं, कभी इशारे नहीं करता सम्बन्ध के, प्रेम के। भूल ही गया कि कोई है भी। तीन वर्ष बीते। एक दिन साधु ने उसे रोका। उसके कन्धे पर हाथ रखा, उसकी तरफ देखा, उसकी तरफ मुस्कराया, उससे कुछ

बोला । वह साधु बोला आज मैं इतना प्रसन्न हूं, आज मैं तुमसे बोल कर इतना प्रसन्न हूं और मैं तुम्हें बता दूं कि नौ वर्ष मैंने तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया ?जब तुम आये थे, तुम इतने उत्सुक थे कि तुम्हारी देह को कोई देखे । इसलिए मैं डरा कि देखना ठीक नहीं है क्योंकि तुम्हारी देह को कोई देखे इससे जो प्रसन्नता होती है वह जड़ता लाती है । तुम देह की तरफ प्रभावित होते हो । हम सब चाहते हैं कि देह को हमारी कोई देखे । हम सब चाहते हैं कि कोई हमें देखे । क्या है आप में देखने को ? क्या है किसी में देखने को ? अपनी, अपनी ही देह को बहुत गौर से देखें कुछ भी देखने योग्य मालूम नहीं पड़ेगा । और अगर आपकी ही आंख में, अपनी देह में कुछ देखने योग्य मालूम नहीं पड़ता तो दूसरों की आंखों को कष्ट देने को कौन सी जरूरत है । और अगर आपको अपनी ही देह में कुछ देखने योग्य मालूम नहीं पड़ता तो दूसरे की देहों में आंख गड़ाने की कौन सी जरूरत है ? वहां भी कुछ न होगा । उस साधु ने कहा, मैंने नहीं देखा, क्योंकि तुम बड़े उत्सुक थे कि कोई देखे । तुम बड़े उत्सुक थे कि रिकगनीशन मिले । कोई देखे और स्वीकृति मिले । 'तुम हो" यह दिखाना चाहते थे, "तुम हो" यह जनाना चाहते थे । "तुम कुछ विशिष्ट हो और केन्द्रीतभूत, हो," यह अनुभव कराना चाहते थे । इस डर से मैंने तुम्हें देखा भी नहीं, अपने को रोका । उस दिन फिर देखा था तीन वर्ष बाद । सोचा था कि शायद अब तुम्हें यह भूल गया होगा लेकिन देखते ही तुम इतने प्रसन्न मालूम हुए कि डर गया और मैंने आंख नीची कर ली । तुम पानी की तरह तो हो गये थे । थोड़े तरल, तो हो गए थे लेकिन अभी हवा की तरह नहीं हुए थे । तुम पानी की तरह हो गये थे, बहने लगे थे लेकिन हवा की तरह विरल नहीं हुए थे कि उड़ने लगे । मैं डर गया । तीन वर्ष बाद तुम्हें देख कर मुस्कराया था । सोचा था, अब क्या होता है । तुममें पहले जैसी खुशी तो पैदा नहीं हुई । तुम खुश तो नजर नहीं आए थे, लेकिन आवाक रह गए थे । तुम्हारे मन में प्रश्न उठा था कि मैं क्यों मुस्कुरा रहा हूं । अब तुम पानी की तरह तो नहीं रह गए थे, हवा की तरह विरल हो गए थे । खुशी तो तुम्हें नहीं हुई थी, लेकिन प्रश्न उठा था । थोड़ी सी अड़चन और थी । पानी नीचे की तरफ बहता है, तरल होता है । हवा सब तरफ बहती है, विरल होती है । लेकिन अभी तुम अग्नि की तरह नहीं हुए थे कि ऊपर की ही तरफ उठ सको । मैं और रुका । अभी तुममें कुछ दम्भ शेष था जो

प्रश्न बन गया था। पहली दफा बहुत प्रगाढ़ था तो प्रसन्नता बन गया था, दूसरी तरफ थोड़ा सा ही शेष था तो प्रश्न बन गया था । मैं रूका, तीन वर्ष और बीते। आज तुम्हें साथ बिठा कर बात कर रहा हूं । आज तुम्हें देख कर हंस रहा हूं । आज तुम से प्रीति से बात कर रहा हूं । तुम्हारे कन्धे पर हाथ रखे हूं और तुम मुझे ऐसे देख रहे हो जैसे मैं किसी और से बात कर रहा हूं। उस साधु ने कहा आज मैं तुम्हारे पास, तुम्हारे कन्धे पर हाथ रख कर बात कर रहा हूं और तुम मुझे ऐसे देख रहे हो जैसे मैं किसी और से बात कर रहा हूं। आज मैं खुश हूं, आज तुम अग्नि की तरह हो गये। आज तुम्हारे भीतर अब वही केवल तुम्हें अनुभव हो रहा है जो अग्नि की तरह है और निरन्तर ऊर्ध्वगामी है।

मनुष्य में पदार्थ है जो निम्नगामी है । पदार्थ नीचे गिरता है। मनुष्य के भीतर चैतन्य है जो अग्नि है, ऊर्ध्वगामी है । अग्नि ऊपर की तरफ उठती है । मनुष्य मिट्टी का और अग्नि का जोड़ है। मनुष्य मिट्टी का दीया है और अग्नि की ज्योति है। मिट्टी मृत्यु है, वह अग्नि की ज्योति जीवन है। जो मिट्टी के दीये को ही अपना होना समझेगा उसे जीवन उपलब्ध नहीं हो सकता। और जो अग्नि की ज्योति को अपना होना समझेगा उसे जीवन उपलब्ध हो जायेगा। जो उसे अनुभव करेगा उसे जीवन उपलब्ध हो जायेगा। जीवन दर्शन मेरी दृष्टि में ऐसा कुछ है। ऐसा कुछ कि मृत्तिका की इस देह के भीतर हमें अमृत चैतन्य का अनुभव हो सके।

ईश्वर करे, यह प्यास जगे। आपके भीतर प्यास जगे कि मिट्टी की जगह उस अग्नि को भी जान लें जो निरन्तर ऊपर से ऊपर उठती है और ऊर्ध्वगामी है । यह प्यास जगे, यह प्यास तीव्र हो तो कोई भी वजह नहीं है, इस दुनिया में कोई भी ताकत आपको उसे अनुभव करने से रोक नहीं सकेगी क्योंकि जो निरन्तर भीतर है उसे अनुभव कर लेना सरल है। मनुष्य दूर दूर की इतनी विजय कर लेता है, दूर के साम्राज्य जीत लेता है, गौरीशंकर की चोटी पर पताकाएं गाड़ देता है, चांद तारों पर अपने निवास बना लेता है, समुद्र की गहराइयों में जायेगा और आकाश के कोनों को छान डालेगा । जो मनुष्य विस्तीर्ण जगत में, इस दूर दूर अपनी विजय के चिन्ह बना देगा, हस्ताक्षर कर देगा वह मनुष्य क्या अपने भीतर विजय की पताका नहीं गाड़ सकता है ? क्या वह मनुष्य वहां हस्ताक्षर नहीं करेगा ? निश्चित-निश्चित कर सकता है। मनुष्य की सामर्थ्य अपरिसीम है, लेकिन जीवन अल्प है । सामर्थ्य बहुत है कि हम

अपने भीतर विजय के चिन्ह बना दें, लेकिन जीवन अल्प है। इसलिए जो समय रहते चेत जाता है वह अपने भीतर विजय को उपलब्ध हो जाता है। और जो समय रहते नहीं चेतता वह व्यर्थ हो जाता है। और उसकी सारी जीवन की सामर्थ्य और सरिता मरुस्थल में विलीन हो जाती है। वह फल को और सार्थकता कोउपलब्ध नहीं होता। आपकी सरिता जीवन की ऐसी मरुस्थल में विलीन न हो किसी उद्यान में उस सरिता से फूल आ जायें मैं यह कामना करता हूं।

आपने मेरी इन बातों को इतने प्रेम से, इतने शांत होकर सुना कि आप जैसे भूल ही गये कि आप मिट्टी की देह हो और मुझे थोड़ी ही देर में लगने ही लगा कि आप सबके भीतर ज्योति जल रही है और आप ज्योति के दिए हो। यहां लोग मिट गए और एक अग्नि का प्रवाह मेरे लिए हो गया। इतने प्रेम से आपने सुना, उसके लिए बहुत बहुत अनुग्रहित हूं। परमात्मा करे, आपकी ज्योति रोज ऊपर से ऊपर उठे, एक दिन आप मिट्टी के दिये न रह जायें, यही कामना है। मेरी इस कामना को स्वीकार करें।

● संकलन : *स्वामी दयाल भारती*
जबलपुर

"Enlightened Day—"
An enlightened soul !
Became Buddha...where ?
There beneath 'Maul Shree',
In the garden of 'Bhawartal';
The day of 21st March,
The year of 1953 at 2 of midnight
The Blessed soul of RAJNEESH—
Became full of Light !"
The entire world was filled...
with 'enlightenment—Bodhi' !!
'Gaya' became Buddhagaya,
Jabalpur be known as—
'RAJNEESHPUR',

● Harshad Patel
DABHOW

★ २१ मार्च, १९७३ ★

भगवान रजनीश बोधि-दिवस

(२१ मार्च '५३ को रात्रि २ बजे भंवरताल उद्यान, जबलपुर में श्री रजनीश जी को बुद्धत्व उपलब्ध हुआ, और वे महाकारुणिक बोधि-सत्वों की शृङ्खला में, भगवत्ता की असीम गहराइयों में अस्तित्व के साथ एक हो आए।
२० वर्ष तक उन्होंने इस रहस्य को संजोया और एक बात-की-बात में उन्होंने यह प्रसंग मा योग क्रान्ति को अभिव्यक्त किया।

भगवान की महाकरुणा-प्रसाद रूप में हम सब पर बरस रही है, द्वार खोलें और वह है।
इस सहज प्रेम आमंत्रण के साथ अर्पित हैं, पुण्य भगवत् चरणों में प्रेम-आनंद के मंगल सुमन।

—*युक्रांद परिवार*

(साथ की प्रस्तुत सामग्री इसी दिव्य आयोजन की प्रेरणा-स्वरूप है।)

विरोधाभासी रजनीश व ओल्ड फोसिल्स

अक्सर रजनीश बड़े विरोधाभासी लगते हैं। वे हैं नहीं, पर लगते हैं। हम लोगों के साथ सदा से ही यह तकलीफ रही है। हमें ऐसे लोग सदैव ही विरोधाभासी लगे हैं—क्या कृष्ण, क्या राम, क्या महावीर, क्या बुद्ध और क्या जीसस। कितनी ही बार रजनीश स्पष्ट भी करते हैं पर हमारा द्वन्द्वों में जीता मन फिर विरोध को पकड़ लेता है। बात समझ में भी आती हुई मालूम पड़ती है और नहीं भी पड़ती है। यह हमारे ही भीतर चल रहे द्वन्द्व के कारण होता है। इसे थोड़ा समझें।

और तो और जो लोग निरंतर रजनीश को पढ़ रहे हैं, सुन रहे हैं, उनके भी सिर से बात ऊपर ही ऊपर से निकल जाती है। जिन लोगों ने रजनीश से दीक्षा ली है वे भी अपने को बराबर द्वन्द्व में फंसा पाते हैं।

कुछ दिन पहले एक मित्र कहने लगे कि रजनीश ने हमको अच्छा बेवकूफ बनाया हुआ है। उन्होंने हमें यह माला पहनाकर अपने प्रचार का अच्छा प्रबन्ध किया है। हम जहां भी जाते हैं इस रजनीश का प्रचार सहज ही हो जाता है। मैंने उनसे कहा कि यदि तुम्हें ऐसा लगता है तो तुम माला को उतार दो। तुम्हें किसी ने मजबूर तो किया नहीं है। तुम्हारी मन की मौज थी कि तुमने संन्यास लिया। अब भी तुम्हारी मन की मौज है, चाहे रखो, चाहे उतार दो। माला वापस कर दो। पर वे ऐसा भी नहीं कर पा रहे हैं।

अभी कल एक मित्र कहने लगे कि बाकी तो सब ठीक है, परन्तु यह संन्यास, यह माला, ये गेरुए वस्त्र अपने को समझ नहीं पड़ते। वे फिर कहने लगे—मैंने बहुत सा रजनीश साहित्य पढ़ा है। प्रवचन भी सुने हैं, ध्यान भी करने गया हूं, साधना शिविर भी अटेन्ड किये हैं। वह सब ठीक लगता है, हालांकि ध्यान हमें होता नहीं पर यह संन्यास की बात अपने को बिलकुल नहीं जँचती। मैंने उनसे कहा कि आप जँचाने की कोशिश ही मत करें। आपको जो ठीक लगता है बस वही काफी है। जानें कि बाकी आपके लिए नहीं है। वह जिनको ठीक लगता है उन्हें

करने दें। आपको प्रवचन ठीक लगते हैं, प्रवचन ही सुनें।

अब हमारी तकलीफ क्या है ? हम चाहते हैं कि जितना हमें ठीक लगता है, रजनीश उतना ही करें। उससे जरा भी ज्यादा या कम किया कि रजनीश हमारी समझ के बाहर पड़े। हम अपनी धारणायें रजनीश पर भी थोपना चाहते हैं। परन्तु रजनीश की अपनी तकलीफ है। वे केवल आपके लिए नहीं बोल रहे। वे केवल एक व्यक्ति के लिये श्रम नहीं कर रहे। वे लाखों-करोड़ों व्यक्तियों को ख्याल में रखे हुए हैं। उन्हें कई-कई मार्गों की बात करनी पड़ती है, ताकि जिसे जो ठीक लगे वह वही मार्ग अपने लिए चुन ले।

अब जो लोग ज्यादा बुद्धिवादी हैं, उन्हें जब रजनीश प्रवचन देते होते हैं तो वे बीच-बीच में एकदम बोल पड़ते हैं—"वाह, वाह"। परन्तु तुरन्त प्रवचन के बाद जब वे लोगों को ताली बजा-बजा कर कीर्तन करने के लिए कहते हैं तो उन बुद्धिजीवियों को बड़ा अजीब लगता है। ताली बजा-बजा कर कीर्तन करना, अन्ट-शन्ट तरीके से नाचना-गाना, उन्हें बड़ा बेहूदा लगता है। यह बड़ी निर्बुद्धि की बात लगती है। पर रजनीश कहते हैं—"चलो अब निर्बुद्धि की यात्रा करें, बुद्धि की बात तो हो ली, अब हृदय की यात्रा पर चलें।"

यहां रजनीश समझ के बाहर पड़ जाते हैं। उसका कुल कारण यह है कि हम थोड़ा सोचने का प्रयत्न नहीं करते। जिनका हृदय का केन्द्र ही विकसित हुआ है उनके लिए रजनीश को यह आयाम जोड़ना पड़ता है। और जिनका हृदय का केन्द्र विकसित नहीं हुआ है उन्हें भी आह्वान दिया जाता है कि आओ और अपने हृदय के केन्द्र को तनिक खोलो। बुद्धि से बहुत काम लिया पर कुछ हुआ नहीं। अब हृदय के द्वार भी खुलने दो। पर हम हैं कि जड़ हुए बैठे हैं। और कभी कोई हिम्मत भी दिखलाता है तो यों ही सभ्यता के दायरे में बन्द हाथ उठाता है और कोरा का कोरा ही लौट जाता है। कभी स्वयं को खुलने नहीं देता।

बात फिर अटक जाती है। जो कुछ बुद्धि के तल पर जाना था वह भी यहां से बाहर निकलते-निकलते साफ हो जाता है। क्योंकि मन एक विरोध को पकड़ लेता है और हम यह कहते हुए लौटते हैं कि रजनीश जैसे ज्ञानी पुरुष यह क्या करवाते हैं ! इसमें क्या 'सेन्स' है ?

तब हम भूल जाते हैं कि हम कह क्या रहे हैं। एक तरफ तो कहते हैं कि ज्ञानी पुरुष और दूसरी तरफ कहते हैं कि क्या 'सेन्स' है। या तो रजनीश ज्ञानी नहीं हैं और यदि हैं तो जो कुछ वे करवाते हैं उसमें 'सेन्स'

है। हां, हमारी पकड़ में नहीं आता। बस इतना ही। तो बजाय उस पर सोचने-विचारने के, बजाय उसके अनुभव में उतरने के हम द्वन्द्व में फंस जाते हैं।

और इतना तो पक्का है कि रजनीश हमसे ज्यादा ही समझते हैं। जो बात हमारी समझ में आ सकती है वह उनको समझ में नहीं आये, ऐसा तो हो नहीं सकता। यदि वे हमसे अधिक न जानते होते तो हम उन्हें सुनने क्यों जाते ? वे खुद ही हमें सुनने चले आते। पर हम बड़े अजीब लोग हैं। सुनने भी जायेंगे, यह भी कहेंगे कि गजब का विद्वान पुरुष है और साथ ही यह भी कहते जायेंगे कि इसमें क्या 'सेन्स' है ? हाँ, यह हो सकता है कि हम यह कहें कि भई, यह बात हमारी समझ में नहीं आ रही, पर हम समझने की कोशिश करेंगे। और फिर भी हमें कोई बात नहीं रुचती तो कोई बात नहीं। जिन्हें ठीक लगती हो, वे करें। हम बेकार ही अपनी शक्ति क्यों गँवायें।

हमें सभी बातों का पता नहीं है। सभी बातों के पीछे भारी वैज्ञानिकता छिपी पड़ी है। उन्हें रजनीश ने समय-समय पर स्पष्ट भी किया है। माला और गेरुए वस्त्र आदि काफी महत्वपूर्ण हैं साधक के लिए। पर फिर भी हो सकता है, सभी चीजें सभी के लिए माफिक न पड़ें। पर उससे हमें रजनीश को समझने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। अच्छा हो कि हम रुकें, खोजें कि उनका क्या अर्थ है ? हो सकता है कि कभी उनकी सार्थकता हमारी समझ में आ जाये।

एक मित्र कहने लगे कि रजनीश 'ओल्ड फोसिल्स' को, पुराने अस्थि-पंजरों को पुनः स्थापित करना चाहते हैं। अब हमें यह सोचना चाहिए कि पुराने अस्थि-पंजरों को पुनः स्थापित करने से उन्हें क्या मिलेगा ? फिर हम साथ ही यह भी कहते हैं कि रजनीश 'फुल्ली एनलाइटेन्ड' हैं। तो फिर बात ही खत्म हो गई। इतना तो इससे तय हो गया कि उन्हें किसी भी बात से कुछ लेना-देना नहीं : हां, उनका इतना मतलब जरूर है कि हमारा जो खजाना खो गया है और जो आज भी उपयोगी है और बड़े काम का है, उसे वे उसकी पूरी उपयोगिता में स्पष्ट कर देना चाहते हैं, ताकि हम चाहें तो उसका लाभ ले सकें। सूरज बहुत पुराना है, पता नहीं कितने वर्ष हुए उसे चमकते हुए, पर हम यह कहें कि सूरज की रोशनी हम न लेंगे क्योंकि सूर्य बहुत पुराना है तो इससे सूर्य का कुछ बिगड़ने वाला नहीं। हाँ, हम एक धरोहर से हाथ धो बैठेंगे और हमेशा-हमेशा अन्धेरे में कुलबुलाते रहेंगे।

रजनीश का 'ओल्ड फोसिल्स' से कोई लगाव नहीं। वे तो उसकी अर्थ-वत्ता स्पष्ट कर रहे हैं। जिन्हें उनका उपयोग करना हो, करें; न करना हो, न करें।

इस संबंध में यह भी बात कर लेना उचित होगा जैसा कि कई मित्र आलोचना करते हैं कि यही रजनीश संन्यास के विरोध में बोलते थे और यही इसको पुनः स्थापित करना चाहते हैं। वे जिस संन्यास की निन्दा व आलोचना कर रहे थे, वह संन्यास का विकृत रूप है। सच में संन्यास खो ही गया है। सिर्फ संन्यास के नाम पर पाखण्ड, धूर्तता, धोखाधड़ी ही रह गई है। संन्यास भी खाने-कमाने का एक धन्धा हो गया है। ऐसे संन्यास की वे सदा से आलोचना करते हैं। आवश्यकता है कि संन्यास जो कि जीवन का उच्चतम शिखर है, वह खो न जाये, इसलिए नये युग में, नये संन्यास का विचार देना होगा। जो सड़ गया, गल गया, खाली 'रीचुअल' रह गया उसे उखाड़ फेंकना है ताकि नये संन्यास का बोज लगाया जा सके। यदि कोई भवन जराजीर्ण हो गया हो, खंडहर हो गया हो तो उसे भूमिसात करके नये भवन का निर्माण करना कोई गलत बात नहीं है। तब हम नहीं कहते कि यह आदमी अभी-अभी इस भवन को गिरा रहा था अब उसी जगह नये भवन की नीवें उठा रहा है।

रजनीश की अपनी दिक्कत है। वह हमारे ख्याल में आ जाये तो हमारे लिए श्रेयस्कर है। वे बहुत बड़े क्षेत्र पर काम कर रहे हैं। एक-एक आदमी के लिए क्या ठीक होगा, वे इस पर बात कर लेना चाहते हैं। उसे संकेत कर देना चाहते हैं। हां, जो बात एक के लिए ठीक है, दूसरे के लिए ठीक नहीं पड़ेगी। उनका कार्य-क्षेत्र बहुत विशाल है। वे कभी ऐसी बात करते हैं जो मुझे ठीक नहीं लगती। परन्तु वह बात दूसरों के लिए ठीक है। तब हमें धैर्य रखना है और ख्याल रखना है कि मैं अकेला ही तो नहीं हूं, इतने लोग और भी तो हैं पृथ्वी पर। वे मुझ अकेले के लिए ही नहीं हैं, वे सबके लिए हैं और सब अनूठे हैं, अपूर्व हैं, बेजोड़ हैं। उन सबको भी मार्गदर्शन देना है। यदि इतनी बात ख्याल में रही तो रजनीश विरोधाभासी नहीं लगेंगे और शायद हम उन्हें ठीक से समझ सकेंगे। कृष्ण खाली अर्जुन को ही गीता ज्ञान देने नहीं आये थे, गोप-ग्वाले भी थे जिनके साथ कि उन्हें नाचना था, बंसी बजानी थी, क्योंकि वे नहीं समझ सकते थे।

● *स्वामी चैतन्य बोधिसत्व*
अहमदाबाद

प्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी, न्यारे बहुत लगते हो
न्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी, प्यारे बहुत लगते हो

बलि-बलि जाऊं इक-इक छवि पर, रूप सुधा की खान
तेरी एक हंसी में मेरो अटक गयो है प्रान
उजियारे बहुत लगते हो प्रभू जी, प्यारे बहुत लगते हो
प्यारे बहुत लगते हो, प्रभू जी, न्यारे बहुत लगते हो

जब देख्यो रजनीश मोहने, तोहे अन्दर जाय
रस को सागर भर्‌यो वहां पर आयो खूब नहाय
रतनारे बहुत लगते हो प्रभू जी, प्यारे बहुत लगते हो
प्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी, न्यारे बहुत लगते हो

तेरो प्रेमामृत पी-पीकर छक्यो रहत है प्रान
तेरो सुमिरन करत-करत ही लग्यो हमारो ध्यान
दृग-तारे बहुत लगते हो प्रभू जी, प्यारे बहुत लगते हो
प्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी, न्यारे बहुत लगते हो

जब से प्रीतम ! प्रीत लगाई तोसे दृग उरझाय
फूल्यो-फूल्यो फिरूं, बताऊं सबके घर-घर जाय
अनियारे बहुत लगते हो प्रभू जी, प्यारे बहुत लगते हो
प्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी, न्यारे बहुत लगते हो

करुणा-सागर, प्राण-प्रभाकर सबके मन के प्यार
गीताओं के ज्ञान और सब उपनिषदों के सार
दुख-हारे बहुत लगते हो प्रभू जी, प्यारे बहुत लगते हो
प्यारे बहुत लगते हो प्रभू जी न्यारे, बहुत लगते हो

• *स्वामी योग प्रीतम*
भीलवाड़ा (राजस्थान)

आनंद-शिला

साधना शिविर

एक झलक

...सुन रखा था कि आनन्द-शिला आश्रम विश्व-केन्द्र होगा। और कि यह अम्बरनाथ, त्रिमूर्ति हिल्स के पास स्थापित होने जा रहा है। इसकी स्थापना हेतु साधु आनन्द सागर (प्रवीण भाई) एवं मा आनन्द सरोज (पति-पत्नी) ने ३८ लाख रुपये कीमत की भूमि दान की है व ६ लाख रुपये नकद। पर ९ फरवरी ७३ के पूर्व न तो मुझे आनन्द-शिला के दर्शन हुए थे और न ही उक्त दानी दम्पत्ति के। मैं ९ फरवरी को अपनी स्वयं की आँखों से आनन्द-शिला व युगल भगवान-प्रेमियों के दर्शन कर धन्य हुआ।

आनन्द-शिला पर प्रथम साधना-शिविर ९ फरवरी से १७ फरवरी १९७३ तक था। इसकी सूचना बहुत देर से व कम मित्रों तक पहुंच पाई। तथापि लगभग साढ़े पांच सौ साधकों ने शिविर में भाग लिया। इनमें लग-भग ८० मित्र विदेशी थे। विदेशियों

में कनाडा, फिलिपाइन, अमरीका, इंगलैण्ड, बेलजियम, इटली, जापान, नैरोबी आदि स्थानों के साधक मित्र थे।

आनन्द-शिला की स्थिति सांसारिक वातावरण से दूर एकदम एकांत में, प्रकृति की गोद में है। पास में ऊंची पहाड़ियां, एक ओर झील व ऊपर से बरस रही चांदनी—समूचा मैदान जैसे दूधिया। मेरा ख्याल है चांदनी ही नहीं, उस स्थान पर अंधकार का भी अपना विशिष्ट मजा होगा। एक बात से सभी विस्मित थे कि वह जो पहाड़ की ऊंचाई पर त्रिमूर्ति है हजारों-लाखों वर्ष प्राचीन उसमें एक मूर्ति ऐसी है जैसे भगवान श्री रजनीश का चित्र किसी ने केमरे से उतारा हो। इतना साफ, ऐसे ही बाल, ऐसी ही दाढ़ी, ऐसा ही माथा, ऐसी ही आंखें...सब कुछ...।

भगवान श्री के रहने के लिए जो भवन बनवाया गया था वह अभी अधूरा ही था अतः भगवान श्री को कल्यान में किसी गेस्ट हाउस में ठहराया गया। इससे भगवान श्री को काफी श्रम पड़ जाता था। मार्ग ऊबड़-खाबड़ होने के कारण कार भी ४० मिनट तक ले लेती थी कल्यान पहुंचने में। रोज प्रातः ८ बजे प्रवचन करने को पहुंचना। हिन्दी व इंगलिश में प्रवचन के बाद ध्यान कराना। फिर १०-३० के लगभग कल्यान के लिए प्रस्थान। अपराह्न ३ से ४ व्यक्तिगत मुलाकातें आनन्द-शिला स्थित भवन में। ४ से ५ कीर्तन-ध्यान। ५ बजे फिर कल्यान के लिए प्रस्थान। संध्या ७.३० से पुनः प्रवचन हिन्दी-अंग्रेजी में व त्राटक ध्यान। रात्रि पुनः कल्यान। इस तरह भगवान श्री को इस बार काफी असुविधा व कठिनाई रही, ऐसा मुझे लगता है। पर उनकी करुणा हमारे लिए सारी कठिनाइयां झेल जाती है। इस बार तो संध्या त्राटक व अपराह्न कीर्तन के समय इतनी धूल उड़ती देखी गई कि भगवान श्री जैसे एक झीने पारदर्शी पर्दे में हो जाते। (ज्ञातव्य है कि भगवान श्री को धूल से एलर्जी है)।

भगवान श्री की मां एवं पिता भी शिविर में थे पर वे वहां होकर भी इतने अनुपस्थित रहते कि कम लोगों को पता चल पाया होगा उनका। चुपचाप कीर्तन के समय आकर कहीं भी खड़े हो जाना और सम्मिलित हो जाना। सचमुच, मां व पिता दोनों ही धन्य हैं! या कहना चाहिये कि हम धन्य हैं उनके दर्शन पाकर। सरलता की साक्षात् मूर्ति।

टेण्ट आदि की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। अभी तो आनन्द-शिला की शुरुआत ही है। अतः जंगल में मंगल था। और जो भी व्यवस्था की

गई थी, वह प्रशंसनीय थी। अहमदाबाद के स्वामी सत्यबोधि सत्व, स्वामी आनंद बोधि सत्व, स्वामी आनंद मुनि, स्वामी शंकर भारती आदि यहाँ भी व्यवस्था संभालने में सक्रिय रहे। मुझे यह भी दिखता है कि इन्हें हमारे लिए व्यवस्था जुटाने में इतना संलग्न हो जाना पड़ता है कि अपनी साधना की भी परवाह काफी हद तक छोड़नी पड़ जाती है जिसके लिए उनका आभार मानना चाहिए। हां, एक बात मेरी समझ में नहीं आई कि बम्बई के साधु आनंद संगम से केंटीन खोलने का मित्रों ने अनुरोध किया था। वे अपनी स्वीकृति दे दिये थे और काफी कम कीमत में अच्छा भोजन देने का उन्होंने निर्णय ले लिया था। साथ ही यह भी कि जो लाभ होगा वह आनंद-शिला को और यदि हानि हुई तो वे स्वयं झेलेंगे। जब निवेदन करने पर एक प्रेमी तैयार हो गया व ऐसी सुविधा देने की योजना बनायी तो ठीक समय पर किसी कैटरर को कैण्टीन खोलने की अनुमति क्यों दे दी गई जिसका उद्देश्य केवल व्यापारिक था। जिसने जंगल में अकेले होने का पूरा लाभ उठाया और बहुत ही महँगी चीजें बेचीं। खैर ..। यह भी अच्छा ही रहा।

एक दिन फिल्म अभिनेता प्रेमनाथ व उनके तीन-चार अन्य संगी-साथी स्त्री-पुरुष आए थे जो कि दो दिन शिविर में थे। इस शिविर में पटना के स्वामी आनन्द समर्थ व मारीसस के स्वामी कृष्णनाथ बड़ा आनन्दवर्धन करते थे। वे जहां भी हों मेरे प्रणाम स्वीकार करें। इस शिविर में प्रभु ने कई बार कृष्ण जैसे आश्वासन दिए कि सब छोड़कर आ जाएं, देर न करें, समय न गंवाएं।

इस शिविर में मुझे ऐसा लगा कि कोई भी शिविर किसी भी कीमत पर 'मिस' नहीं करना चाहिये। एक भी शिविर चूकना, चूकना ही सिद्ध हो सकता है। क्योंकि मुझे साफ दिखता है कि यद्यपि प्रत्येक साधना-शिविर अपने में पूर्ण व एक दूसरे से पृथक है तथापि सारे शिविर एक दूसरे से जुड़े हैं व प्रभु जी एक प्रक्रिया के अन्तर्गत हमें लिए जा रहे हैं। साथ ही मैं कह सकता हूं कि अभी तक के शिविरों में यह सर्वोत्तम था अर्थात् साधकों को बहुत लाभ हुआ है।

एक रात्रि इन्दौर के स्वामी दिनेश भारती के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान श्री ने जबलपुर के स्वामी आनंद विजय का स्मरण किया और १२-१३ मिनट तक आनंद विजय की किन्हीं मनः स्थितियों की चर्चा करते रहे। सब लोगों को लगा था कि स्वामी आनंद विजय धन्य हैं जो प्रभु जी के प्रवचन में आए।

भगवान श्री ने एक दिन जब प्रवचन के समय 'अर्हत' व 'बोधिसत्व' का मर्म बताया तो शत-प्रतिशत लोगों की आंखें गीली हो गईं। संक्षेप में आशय यह था कि अर्हत वह है जो मुक्त हो गया, निर्वाण को उपलब्ध हो गया। और बोधिसत्व वह है जो मुक्ति व निर्वाण के द्वार पर तो पहुंच गया पर उसने पीठ फेर ली, कि नहीं, अभी मैं रुकता हूं। अभी संसार में बहुत दुखी लोग हैं। सब को पार लगने का उपाय करूंगा, माध्यम बनूंगा। यानी करुणा के कारण लौट आता है। और करुणा अन्तिम वासना है। यद्यपि कि ऐसा व्यक्ति मुक्त ही है, वह निर्वाण को उपलब्ध ही है, पर उसने अपने को रोक लिया है, अपनी मर्जी से। वह खड़ा है जहां, वहां से मोक्ष भी दिखता है—संसार भी। वह बीच में द्वार बनना चाहता है बहुतों के लिए। नाव बनना चाहता है तमाम डूबते हुओं के लिए। और अर्हत बहुत हो जाते हैं जिनका हमें पता भी नहीं चलता। चल भी नहीं सकता। हमें केवल बोधि सत्वों का पता होता है पर वे बहुत विरल होते हैं।

बोधिसत्व होना बहुत बड़े साहस का काम है। क्योंकि दुख छोड़ना आसान है, पर आनंद की ओर से मुंह फेर लेना बहुत कठिन बात है। अकसर तो साधक को वहां पहुंचकर जगत् का स्मरण भी नहीं रहता कि और भी कोई जगत् है। **इसलिए ही बोधिसत्व की हमने अर्हत से भी अधिक महिमा गाई है।**

आनन्द-शिला पर यह शिविर लगाने की व्यवस्था करने में एक लाख आठ हजार रुपयों का व्यय हुआ। आमदनी ३५ हजार रुपये हुई। अर्थात् ७३ हजार रुपये का घाटा आया। शिविर समाप्ति के दो दिन पूर्व समस्त साधक-प्रेमियों की एक मीटिंग बुलाई साधु ईश्वर समर्पण ने। और दान देकर घाटा पूर्ति करने की अपील की। क्योंकि यह आनंद-शिला का पहला शिविर है। ७३००० रुपये का घाटा पूरा करने में दो-एक मित्र लग जायेंगे तो काम की गति रुकेगी। मैंने देखा कि लोगों ने दिल खोलकर दान दिया। १५-२० मिनट के अन्दर ७०,००० रु० दान में आया। यह भी बताना उचित होगा कि इस मद में दान देने वाले दूसरे मदों में भी (जैसे अलग-अलग प्रान्तों की मीटिंग्स मा आनंद मधु लेती थीं) हजारों दान दे चुके थे। दान देने वालों में विदेशी साधक भी थे। तभी एक और मीठी घटना घटी। जबलपुर के स्वामी अक्षय सरस्वती स्वामी अगेह भारती की जेब से उनकी कलम निकालकर ले गए और एनाउंस करती मा आनंद मधु को दे दिये कि यह नीलाम कर दी जाये और जो भी

पैसा आए वह आनंद-शिला को...। मा आनंद मधु ने जैसे घोषणा की, उनका वाक्य पूरा भी न हो पाया था कि साधु ईश्वर समर्पण ने १०१ रुपये मा आनंद मधु के एक हाथ में रखे और दूसरे हाथ से कलम लेते हुए बोले—यह कलम मुझे मांगता है अतः इसकी और बोली मत बोलिए, अर्थात और अधिक कीमत के लिये नीलाम मत करिए। और ईश्वर भाई ने कलम रख ली। तभी एक मित्र ने आकर ३००० रुपये का दान दिया और घाटा पूरा वसूल हो गया। मा आनंद मधु ने अगेह भारती के पेन को 'लकी पेन' कहा माइक पर, और उसका परिणाम यह हुआ कि साधु ईश्वर समर्पण के पास वह कलम २४ घण्टे भी न रहने पाई। कहीं खो गई, या कोई ले गया। यह सब अचानक हो गया था अतः अगेह भारती हैरान थे कलम के लिये। दूसरे दिन एक पेन मा योग गुणा व एक पेन जबलपुर के स्वामी प्रेम विजय ने अगेह भारती को लाकर दिया, यह और भी मधुर रहा।

...एक दिन चंद्रकांत मकीम ने कहा था--अगेह भारती, तुझे प्रभु की जितनी निकटता मिली है उतनी किसी को न मिली है, न भविष्य में अब मिल सकेगी। यह बात ठीक न हो तो भी अगेह भारती को प्रीतिकर लगी।

शिविर-समाप्ति के दिन अर्थात १७ फरवरी की रात्रि को प्रवचन के समय 'योग दीप' पाक्षिक की संपादिका मा योग वंदना के पैर में बिच्छू ने डंक मार दिया। अतः मैं भी १०-१५ मिनट उन्हीं के पास रहा। हालांकि लालच बहुत लग रही थी कि आज अंतिम दिन प्रवचन में प्रभु जी जाने क्या-क्या अमृत उड़ेल रहे होंगे, पर वंदना को रोते छोड़कर भी हटा नहीं गया। कुछ शब्द प्रभु जी के वहां तक सुनाई पड़ जाते थे—"मैं आप से और कुछ नहीं चाहता कि आप हमें आदर दें, सम्मान दें, पूजा दें, धन दें। नहीं, मेरी आपसे कोई भी अपेक्षा नहीं है। मैं तो सिर्फ चाहता हूं कि आप अपने समस्त दुखों-संतापों को मुझे दे दें। सब पीड़ाओं-यातनाओं-नर्कों को मुझमें उड़ेल दें और स्वयं खाली हो जायें। क्योंकि मुझे तुम्हारे दुखों-संतापों से कुछ भी फर्क न पड़ेगा। मुझमें वे सब समा जायेंगे और विलीन हो जायेंगे, लेकिन आप पर बहुत फर्क पड़ेगा। आप हल्के हो जायेंगे। आप आनंदित हो जायेंगे। आप को वह झलक मिलने लगेगी जो इस जगत् की नहीं है।... आदि, आदि।

...इस बार भी साधु प्रेमसिंह व मा अमृत साधना की भजनों ने अमृत-अनुभव में सहयोग किया। वायलिनवादक श्री पुरुषोत्तम गुजराती

(हालांकि वे पूना के थे) ने भी बहुतों को झुमाया और ध्यान में गहरे जाने में सहयोग दिया।

भगवान श्री के शिविरों में कुछ बातें सदा ही उल्लेखनीय रहती हैं। जैसे कि स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े आदि में अभेद और पूर्ण शांति आनंद। और यह प्रभु का ही चमत्कार है। दूसरी बात कि कहीं भी कोई भी सामान छोड़ दे, कुछ भी गुमता नहीं। यहां तक कि सुबह नल पर घड़ी छूट जाये, पर्स छूट जाये तो दोपहर या सन्ध्या जाने पर वह वहीं मिलती है। शायद ही कोई अपने सूटकेस में ताला बन्द करता हो। यों ही अटैचियां खुली, सामान बिखरे पूरे ९ दिन बीत गए। नवें दिन सामान समेटना शुरू किया लोगों ने, तो आंसू आ गए कि अब फिर सामान की सुरक्षा करनी पड़ेगी, अब फिर अटैची में ताला बन्द करने व खोलने की मुसीबत उठानी पड़ेगी। इस बार बहुतों का मन आनन्द-शिला से लौट कर इस दुनिया में आने को नहीं कहता था। स्वामी आनन्द मैत्रेय, स्वामी योग चिन्मय, स्वामी चैतन्य भारती, स्वामी दिनेश भारती, स्वामी दयाल भारती, स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व, स्वामी आनन्द अर्हत, मा योग मुक्ति, मा आनन्द प्रेम, मा योग गीता व बहुतेरे अन्य मित्र तो आनन्द-शिला में रहना प्रारम्भ ही कर दिए। धन्य हैं ये सब, जो आश्रम के खड़े होने में नींव की ईंटों-पत्थरों का काम कर रहे हैं।

शिविर की चर्चा तो समाप्त हो गई। लेकिन शिविर-समाप्ति पर मैं २-३ दिनों के लिए बम्बई गया। वहां घटी एक घटना की चर्चा न करूं तो यह चर्चा अधूरी ही रहेगी। अतः सुनें प्रभु की करुणा की एक मिसाल। सच तो यह है कि उसकी करुणा इतनी बड़ी है, इतनी अपार है, इतनी असीम है, इतनी अमूल्य, अमाप व अकथ्य है कि जो घटना बताने जा रहा हूं वह उसके समक्ष एकदम तुच्छ है। **पर हमारी बुद्धि इतनी छोटी है। हम छोटी बातों से ही कुछ समझते हैं और छोटी बातों से भी हमें उसकी करुणा का अनुमान लगता है—यह भी उसकी करुणा ही है। वर्ना बहुतों को तो वह भी नहीं लगता।** तो सुनें—

मैं १८।२ की प्रातः ११ बजे बम्बई पहुंचा और अपने मौसेरे भाई श्री ब्रजभूषणसिंह के साथ दादर में ठहरा। १९।२ को हम दोनों ही वुडलैंड में भगवान श्री से मिले। २०।२ को हमने ब्रजभूषण को आफिस जाने को बाध्य किया और अकेला ही भगवान भुवन के लिये चल पड़ा। यहीं बीच में एक बात और बता दूँ। साधु ईश्वर समर्पण अर्थात ईश्वर भाई को उनके आफिस में देखकर चकित रह गया मैं। उनके कार्यालय

के करीब-करीब सभी कक्षों में भगवान श्री का साहित्य भरा पड़ा। टेप्स की लाइब्रेरी अलग, जिसमें हजारों टेप भगवान श्री के भाषणों के। कोई मिलने आए हैं वे भी भगवान श्री के काम के बाबत। किसी का फोन आया है वह भी भगवान श्री के काम के बाबत। तभी चन्द्रकान्त आये हैं कहीं से, वे भी भगवान श्री के काम...। पुनः फोन...भगवान श्री ..। यानी मुझे ईश्वर समर्पण के पास भगवान श्री के काम के अतिरिक्त न कोई काम दिखा, न कोई बात दिखी। वे अपने व्यवसाय की बातें कब निपटाते होंगे, प्रभु ही जानें, खैर...।

तो आज यानी २०।२ को मुझे चल देना था जबलपुर के लिए। चन्द्रकान्त मकीम जी वी० टी० स्टेशन आये मुझे छोड़ने। मेरे पास रेलवे का प्रथम श्रेणी पी०टी०ओ० था जिसमें १।३ किराया देना पड़ता है, पर पैसों की कुछ कमी होने के कारण मैंने तृतीय श्रेणी का टिकिट निकाला। चन्द्रकांत काफी देर से साथ थे अतः उन्होंने जाना चाहा। मैंने उन्हें विदा किया। टिकिट चूंकी थर्ड क्लास का था अतः जगह मिलने में दिक्कत हो रही थी। लगेज के नाम पर एक छोटा सूटकेस व एक बैग था अतः कुली न इंगेज किया था। खुद ही हाथ में लेता गया था। प्लेट फार्म पर उसे रखकर मैं जगह खोजने लगा और ५-७ मिनट में जब वापस लौटा तो देखा मेरा सामान गायब। एकाएक मुझे यकीन न हुआ। बार-बार देखा, आंखें फाड़ कर देखा, चल-फिर कर दाएं-बाएं देखा, पर सामान नदारद। गाड़ी छूटने में दस मिनट की देर थी। एक पुलिस के सहयोग से २-३ डिब्बों के भीतर भी देखा। तब तक गाड़ी छूटने का समय हो गया। मेरे पास कुर्ता व लुंगी जो पहने था वही रह गया था। जेब में ३०) भी थे। शेष सारा सामान जा चुका था। गुमे सामान में भगवान श्री द्वारा कभी दिया गया एक पूरी अस्तीन का स्वेटर व दो चादरों का व लगभग ८०) कीमत की भगवान श्री की किताबों का विशेष दुख था। कम्बल, तकिया, एक-एक चीज स्मरण आने लगे और सचमुच मैं बड़ा 'अपसेट' हो गया। क्योंकि वह सफरी अटैची चलती-फिरती पूरी गृहस्थी थी। वी० टी० पुलिस स्टेशन पर मैंने रिपोर्ट लिखवाई। सब-इन्स्पेक्टर श्री एम० वी० ताडे व उनके पूरे स्टाफ ने बड़ी सहानुभूति प्रकट की। फिर मैंने परेशानी की हालत में ही वुडलैण्ड फोन किया। लक्ष्मी जी फोन पर मिलीं। क्रांति जी को बुलाया। उनसे मैंने पूरा किस्सा बताया और कहा कि आप भगवान श्री से कहें कि अक्टूबर ७२ की २४ ता० को आबू कैम्प से

वापस जबलपुर पहुंचा था और २८ अक्टूबर को जेड-२१७।सी, में चोरी हो गई। पर मैंने कभी भगवान श्री को नहीं बताया। कई प्रेमी कहते भी थे कि बताओ, पर मुझे बताने जैसा नहीं लगा। फिर आप (क्रांति जी) जबलपुर आई थीं व १५ दिनों तक थीं पर उस चोरी का मैंने कभी जिक्र नहीं किया। शायद मैं भूल चुका था उसे। पर आज जो वी० टी० स्टेशन पर सामान गया है, इससे मैं काफी 'अपसेट' हो गया हूं और अपसेट होने का कारण भगवान श्री जानते हैं। तो भगवान श्री से कहिये कि वे क्या चाहते हैं ? फिर ऐसा क्यों होता है? अगर वे पूरा फकीर बनाना चाहते हों तो साफ कहें, इस्तीफा देने भी न जाऊंगा नौकरी पर, यहीं रुक जाऊंगा। क्रांति जी ने १५ मिनट बाद फोन करने को कहा और कि वे भगवान श्री से बताने जा रही हैं।

मैंने उपर्युक्त बातें कह तो दीं क्रांति जी से पर अब भीतर लग रहा था कि बातें ऐसे ढंग से कहीं हैं कि मानो भगवान श्री ने चोरी करवा दी हो। या खुद कर ली हो। अतः एक बात और आज स्पष्ट हुई की भगवान का एक लक्षण यह भी है कि हम अपनी गलतियों-गुनाहों को भी उसके ऊपर मढ़ देते हैं और वह उन्हें भी सहर्ष स्वीकार लेता है।

मैंने जब १५ मिनट बाद फोन किया तो क्रांति जी ने कहा कि अगर तुम वुडलैण्ड आ सको तो कुछ कपड़े आदि का प्रबन्ध हो सकता है। मेरी जबलपुर की ट्रेन तो छूट ही चुकी थी। मैं टेक्सी से सीधे 'वुडलैण्ड' गया। वहां देखता हूं कि स्वामी कृष्ण कबीर के कक्ष में मेरे लिए कपड़ों का पुलिंदा बनाया जा रहा है। (भगवान श्री अपने कक्ष में हैं। मैं उनके सामने पड़ना भी नहीं चाहता था उस समय और उस अन्तर्यामी ने मुझे कृपा करके बुलवाया भी नहीं) मेरे सूटकेस में एक कुर्ता व एक लुंगी गुमे थे। यहां ४ कुर्ते व ३ लुंगियां बाँधी जा रही हैं। मां योग सम्बोधि इस बार शिविर नहीं आ पाई हैं पर उनके लिए भी तीन गेरुए रंग की साड़ियां व तीन ब्लाउज। मेरा टावल फट गया था। यहां नया टावल तह किया जा रहा है। एक गद्दा एक तकिया। एक कम्बल जिसे भगवान श्री एक दिन पहले तक स्वयं ओढ़ते थे। कम्बल ऐसा है कि वैसे कम्बल बाजार में दिखते नहीं हैं ? नरेन्द्र जी ने कहा तुम्हारा सामान गुमना सुखद है। कृष्ण कबीर ने खिलखिलाते हुए कहा भगवान श्री ने तुम्हारा सामान किसी और को दिलवा दिया, अब तुम्हें दूसरा दे रहे हैं, यह तो मजेदार बात है। बात-चीत के दौरान शायद मैंने किसी से बताया रहा होगा कि भगवान श्री

का एक रंगीन चित्र ले जा रहा था एक मां ने मांगा था वह भी उसी सूटकेस में था। मां योग लक्ष्मी ने एक कलर पेन्सिल भेंट की थी वह भी उसी में थी। अचानक मैंने देखा कि प्रभु के दो रंगीन चित्र उनके हस्ताक्षर से युक्त और एक कलर पेंसिल लेकर लक्ष्मी जी सामने मुस्कराती खड़ी हैं। कहतीं हैं भगवान श्री ने अभी चित्र बुलाकर हस्ताक्षर किया है और चित्र व पेंसिल दोनों तुम्हें देने को दिया है। मैं तो एकदम सूख गया। काटो तो खून नहीं। लक्ष्मी तब तक वहां से जा चुकी थी। मेरे मुंह से निकला यह चित्र व पेंसिल के बारे में किसने कहा होगा प्रभु को? पिता जी ने कहा लक्ष्मी ने हा जाकर कहा होगा। मैंने कहा—लेकिन मैं आपस में बात करते हुए बता गया था कि यह था, वह था, इसका मतलब यह थोड़े कि जाकर प्रभु से कहा जाय! मैंने अपना माथा पकड़ लिया। नरेन्द्र जी ने कहा कोई बात नहीं भाई, कृष्ण ने तो सुदामा की झोपड़ी को महल बना दिया था। मुझे हंसी आ गई, आंखों में आंसू भी भर आये। प्रभु की करुणा अपार है। मैं चुपचाप वहां से सामान उठाया, सड़क पर आकर टैक्सी किया और ब्रजभूषण के पास चला गया दादर। क्योंकि वहां हालत यह थी कि जो भी मुंह से निकलता था कि यह चीज भी थी, वही चीज आ जाती थी। मेरा जी वहां रहने व भगवान श्री को इस तरह सताने का नहीं हुआ अतः दादर चला आया।

दूसरे दिन कस्तूर भाई गांधी को जब इस सब का पता चला तो वे एक टूरिस्ट बैग बड़ा सा दे गए जिसने कि सूटकेस का काम किया।

सबसे बड़ी विचित्र घटना आगे घटी जब संध्या वी० टी० स्टेशन पर एकोमोडेशन के लिए दौड़-धूप कर रहा था। एक आदमी दौड़ा-दौड़ा आता है, और पूछता है—बाबा जी आप रेलवे में काम करते हैं? मैं कहता हूं—हां। वह कहता है-आपका ही सामान कल गुम गया था? मैं कहता हूं-हां। वह कहता है-आपका सामान मिल गया, लास्ट प्रापर्टी में जमा है, जाकर देख लें। मुझे यकायक विश्वास तो न आया पर जाकर देख लेने में भी कोई हर्ज न था। मैं वहां गया तो मेरा सूटकेस व बैग रस्सी में बंधे, सील लगे रक्खे थे। सूटकेस खोला तो पाया कि एकाध नन्हें आइटम्स छोड़कर बाकी सारा सामान सुरक्षित है। यानी कहा जा सकता है कि कुछ भी नहीं गुमा। मैं तुरन्त दौड़ कर वुडलैण्ड को फोन किया व लक्ष्मी जी से निवेदन किया कि प्रभु जी को जरूर ही बता देना कि सामान मिल गया। फिर कस्तूर भाई गांधी को भी फोन पर ही सूचना दी। लक्ष्मी व गांधी जी ने खुशी जाहिर की। मुझे जगह भी जनता

एक्सप्रेस में ऐसी मिल गई जैसे रिजर्वेशन करवाया हो। फिर लेटे-लेटे प्रभु जी के बारे में विचार करता, अकेला ही कभी हंसता, कभी रोता, खोता चला गया। चला गया।

सचमुच सामान गुम जाने की घटना जो उस समय दुखद लगी थी, आज बड़ी सुखद लगती है। क्योंकि प्रभु की बरसती करुणा को देखने का अवसर उस घटना ने भी दिया। और यह भी शायद सत्य है कि यह घटना न घटी होती तो इस बार मैं 'आनंद शिला' का संस्मरण लिखने को प्रेरित नहीं था। क्योंकि लगता था वह सब अवर्ण्य है, अद्‌भुत है। फिर बार-बार उसे अवर्ण्य व अद्‌भुत कह भी चुका हूं। तो क्या उसे रिपीट करना ?.....

अंत में रहस्यमय, करुणानिधान, सुजान, शील भगवान रजनीश के चरणों में हम सब के शत्-शत् प्रणाम !!

● *स्वामी अगेह भारती*
जबलपुर

नियम संख्या ८ के अनुसार 'युक्रांद' के स्वत्वाधिकार संबंधी व अन्य विवरण

फार्म ४

१.	प्रकाशन का स्थान	: ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर
२.	प्रकाशन आवृत	: मासिक
३.	मुद्रक	: अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर
४.	प्रकाशक	: अरविंदकुमार
५.	संपादक	: अरविंदकुमार
६.	मुद्रक, प्रकाशक व संपादक की राष्ट्रीयता	: भारतीय
७.	स्वत्वाधिकारी	: अरविंदकुमार

मैं अरविंदकुमार प्रमाणित करता हूं कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

जबलपुर — हस्ताक्षर
दि० ११ मार्च, '७३ — *अरविंदकुमार*

जीवन सहजता में पूर्ण सौरभ बिखेरता है—

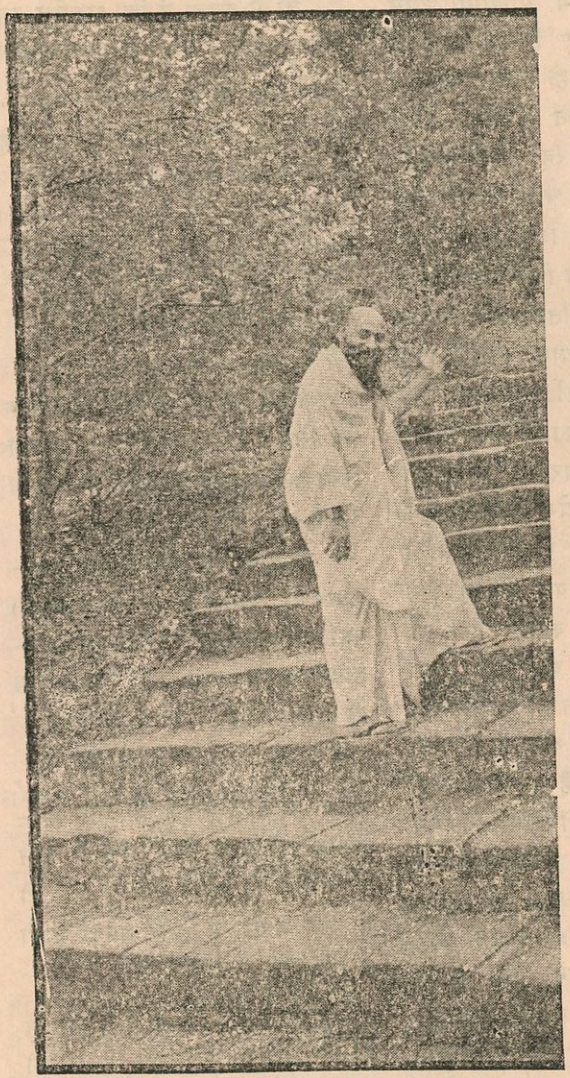

(भगवान श्री के बोधि-दिवस पर भगवान ने जो सहज जीवन दृष्टि दी है, उसे यहां हम उनकी एक प्रश्नोत्तर वार्ता से दे रहे हैं—जो दिसंबर, ६९ में जबलपुर में प्रगट हुई।)

प्रश्न—भगवान श्री, मैं संगीत सीखती हूं, रियाज करती हूं—लेकिन उससे ऊब जाती हूं। कहते तो हैं कि संगीत आनंद है, पर मुझे तो बोझ मालूम पड़ता है। ऐसा क्यों ?

भगवान श्री :

जो भी तुम सीखोगी उससे ऊबोगी भी, और जिसका अभ्यास करोगी उससे मुक्त हो जाना चाहोगी। जिसका भी प्रयत्न करोगी, उसमें ज्यादा देर नहीं रह सकतीं क्योंकि सब प्रयत्न विश्राम चाहता है। संगीत का अभ्यास जिस दिन न करोगी, अनुभव करोगी उस दिन ऊबोगी नहीं और जिस दिन संगीत तुम्हारा सीखने की चेष्टा और अभ्यास (Effort) न होगा, Effortless होगा, उस दिन फिर विश्राम का भी कोई सवाल न रह जायेगा। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं और प्रेम करने में मुझे किसी तरह का श्रम करना पड़ता है तो किसी दिन मुझे यह प्रेम घबड़ाने वाला हो जाएगा। क्योंकि फिर यह कहेगा कि विश्राम करो, छुट्टी करो इस प्रेम से, यह बहुत हो गया, आराम करो। जहां भी श्रम होगा, वहां विश्राम अनिवार्य है। सिर्फ उन्हीं चीजों में विश्राम नहीं आयेगा, जिनमें कोई श्रम नहीं है। मौज में ही कर रहे हो—सहज ही कर रहे हो। संगीत को अभ्यास मत बनाना और इसे थोड़ा सोच लेने जैसा है कि संगीत को अभ्यास बना लोगी तो कुशल टेकनीशियन हो जाओगी, संगीतज्ञ नहीं-अंततः। अंततः तुम इतनी कुशल हो जाओगी संगीत में कि ये काम करना एक कुशलता होगी, लेकिन प्राण इसमें कहीं भी नहीं होंगे।

तो मैं कहता हूं कि अकुशल रह जाना, लेकिन टेकनीशियन मत बन जाना।.....

बहिन : "इसका मतलब यह है कि मैं संगीत जारी रखूं ?"

भगवान श्री : संगीत तू Continue कर लेकिन जिस ढंग से तू कर रही है—वैसा Continue मत कर।.....

बहिन : "क्या करें ?.....गुरू वैसे मिले हैं कि तीन-तीन घंटे गले का रियाज करवा रहे हैं, इम्तहान दिलवा रहे हैं।"

भगवान श्री : संगीत का इम्तहान तो होना ही नहीं चाहिए। क्योंकि जिस चीज को भी हम इम्तहान बनायेंगे वह ऊब पैदा करेगा ही।

बहिन : "मुझे तो ठुमरी के, भजन के भाव सहज ही आते हैं—लेकिन परीक्षा के लिए जैसे ही ताल पर संगीत को बांधा जाता है, वैसे ही मैं ऊब जाती हूं और घबड़ा जाती हूं।"

भगवान श्री : ठीक है, जीवन में जो भी हमारे महत्वपूर्ण है, उसकी परीक्षा ली ही नहीं जानी चाहिए। जो व्यर्थ है उसमें परीक्षा होनी चाहिए—जो सार्थक है, रसपूर्ण है—

उसे परीक्षा की भाषा में सोचना ही नहीं चाहिए।

बहिन : "मीरा का संगीत कितना अच्छा लगता है।"

भगवान : हां, मीरा कोई संगीतज्ञ थोड़े ही है, सच तो यह है कि संगीतज्ञ सदा भूल बताते रहे होंगे, ये गल्ती है, ये गल्ती है। लेकिन वह सहज आनंद से उद्‌भूत है। परीक्षा के बहाने से जो टेकनीक जाना जावेगा, वह जबरदस्ती जाना जायेगा। टेकनीक जानो, टेकनीक जानना तो जरूरी है, लेकिन जब तुम उसे जबरदस्ती जानना चाहोगी परीक्षा के लिए तो वह टेकनीक जानना तो कम हुआ, आत्मघात हो जायेगा। पर, आदमी के साथ मुश्किल यह है कि सहज वह कुछ भी नहीं कर सकता, जिसको हम प्रेम कहते हैं–उसे भी हम सहज नहीं कर सकते। तो संगीत को असहज करने की तरकीब है--परीक्षा। उसको और दूसरे भयों से जोड़ने की तरकीब है—कि कहीं असफल न हो जाओ, कहीं दूसरे से पीछे न रह जाओ...और जो सहज है, उसे असहज कर दिया जाएगा।

अगर, मुझे संगीत से प्रेम है... तो है। परीक्षा से संगीत के मेरे प्रेम में क्या फर्क पड़ता है ? परीक्षा से संगीत को क्या लेना देना है ?..... नहीं, लेकिन आदमी के अहंकार का लेना देना है, जब तुम अहंकार को बीच में ले आओगी और फिर संगीत सीखो तो टेकनीशियन से ज्यादा कभी भी नहीं हो सकतीं। संगीतज्ञ नहीं हो सकतीं, क्योंकि संगीतज्ञ की बिलकुल उल्टी प्रक्रिया है। सच तो यह है कि जितना अहंकार क्षीण होता चला जायेगा, उतना संगीत बढ़ता चला जायेगा। अंततः जैसे मीरा की तुम बात करती हो, मीरा के व्यक्तित्व में केवल संगीत ही रह गया है। मीरा से पूछो कि तुम कहां हो—तो मीरा कहेंगी कि बस यही है मैं नहीं हूं, ये भावदशा आ जाएगी, लेकिन एक प्रतियोगी है, उससे पूछो तो वह कहेगा कि मैं हूं..... संगीत कहां है? अगर संगीत कुछ भी है तो वह उसके मैं की पुष्टि है, उसकी छाया है। तो, हो सकता है कि एक आदमी दुकान इस तरह चलाये तो बुरा नहीं है, हालांकि है तो अंततः वह भी बुरा। किसी दिन दुकान भी कोई ऐसी चला सके, जैसे मैंने कबीर की बात कही वो दूकानदार नहीं हैं : कबीर। वो भी बेचते हैं कपड़े जाकर बाजार में, लेकिन वो दूकानदार नहीं हैं। किसी दिन तो दूकानदारी भी इस तरह हो, लेकिन अगर नहीं हो सकती है तो कम से कम जीवन में जिनको हम बहुत गहरे तल से लेते हैं : संगीत को लेते हैं, प्रेम को लेते हैं या काव्य को लेते हैं—ये तो कम से कम जीवन के आनंद से आविर्भूत हों, न तो इनकी

परीक्षा लेनी चाहिए और न परीक्षा की भाषा में सोचना चाहिए। और न इनका अभ्यास हाना चाहिए, कुछ घटित होने देना चाहिए हो सके तो, न हो सके तो रुक जाये।

कूलरिज जब मरा, तो कोई ४० हजार कवितायें और निबन्ध अधूरे उसके घर में मिले। ४० हजार। उसके मित्रोंसे पूछा गया कि इतने निबंध और कवितायें अधूरी—कूलरिज तो जगत् का सबसे बड़ा महाकवि हो जाता। मुश्किल से दस पांच कवितायें ही उसने पूरी की हैं, बाकी सब अधूरी हैं। तो उसके मित्रों ने कहा कि हमने भी कितने बार न कहा लेकिन कूलरिज यह कहता था कि तीन पंक्तियां आईं और बाकी पंक्तियों को लाना पड़ेगा। मैं लाने वाला कौन हूं? और फिर तीन तो कोई और ही तल की होंगी, बाकी और ही तल की होंगी। पूरा तो मैं कर दूंगा, लेकिन पूरा करने वाला मैं कौन हूं? मैं प्रतीक्षा करूंगा, अगर कभी आगे आ गईं तो ठीक, अन्यथा बस वे तीन ही ठीक। अगर कोई काव्य को प्रेम करता होगा तो समझेगा अन्यथा न समझेगा। बाकी पूरा करने वाला मैं कौन, न मैं इन्हें लाया, उसने कभी भी पक्तियों को काटा नहीं। जो आया, उसको उसने वैसे ही लिख दिया, उसको सुधारा भी नहीं, काट-पीट उसने नहीं की। क्योंकि वह कहता है कि मैं कौन हूं—पीछे उसको काटने वाला। जैसा है.....है।

ऐसे एक बगीचे में खिलता है फूल और बड़ा खिलता है। एक जंगल में भी फूल खिलता है; ज्यादा रंग-वाला और आकर्षक हो बगीचे का फूल यह हो सकता है। लेकिन फिर भी जंगल के फूल की एक खूबी है... वो जैसा है...है। उसमें कहीं कोई कांट-छांट, कहीं कोई हिसाब-किताब नहीं लगाया। ये जो बड़ा फूल खिलता है, बगीचे में माली के, इसको खिलाने के लिए बगीचे में सब फूल काट दिए जाते हैं, ताकि सारा रस उसको मिल जाए। बाकी कली काट दी जाती हैं, नहीं तो यह इतना बड़ा नहीं हो सकता। उसको सारा रस मिल जाए, सब फूल काटके उस एक को बना दिया जाता है। हिंसा वहां पूरी हो गई है, कई फूलों की हिंसा करके फूल बड़ा हो गया है। तो, ऐसे तो यह बड़ा है, लेकिन अगर कोई गहराई से देखे तो यह कुरूप (UGLY) है।

जैसे, हमारा बड़ा आदमी है: धनपति है। वह पचास लोगों को गरीब करके बड़ा हो गया है, तो वैसे तो बड़ा है ही। बड़ा मकान है, संगमरमर का है, सब कुछ है लेकिन कुरूपता कहीं बुनियाद में बैठी है। वही इस फूल में भी बैठी है, हमें

फूल में दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि हमने वे फूल नहीं देखे जो रोज कट रहे हैं। जापान में एक बड़ा सम्राट हुआ, वहाँ मार्निंग ग्लोरी एक बड़ा फूल होता है। तो वहां एक फकीर की बगिया में बहुत से फूल खिले मार्निंग ग्लोरी के। सम्राट तक खबर पहुंच गई कि ऐसा फूलों का बहाव आ गया है, फूलों का पूर आ गया है--उस फकीर की बगिया में। तो सम्राट ने खबर भेजी कि मैं सुबह देखने आता हूं। तो उस माली ने, उस फकीर ने.....फकीर ही था, उस माली ने सब फूल काट डाले और सब पौधे उखाड़ डाले, सिर्फ एक पेड़ और एक फूल बचाया। सम्राट देखने गया, तो उसने कहा कि मैंने तो सुना है कि एक पूर आया हुआ है : फूलों का। तो फकीर ने कहा कि तब आपको यह फूल दिखाई न पड़ता। ये सबसे बड़ा फूल आपको दिखाई न पड़ता, इससे सब काट दिए हैं ताकि सबसे बड़ा आपको दिखाई पड़े। और उस फकीर ने कहा : ध्यान रहे कि जहां भी सबसे बड़ा दिखाई पड़े जानना कि वहां सब काट दिए गए हैं, तभी बड़ा दिखाई पड़ा है, अन्यथा बड़ा दिखाई न पड़ता। तो एक तो सहज flowering है...तो संगीत को तू उस भांति लेगी तो मीरा वाली यात्रा न होगी, फिर एक दूसरी तरह की यात्रा होगी...तानसेन वाली यात्रा होगी।

संगीत को परीक्षा मत बनाओ, अभ्यास मत बनाओ। पूछा तो मुझे ख्याल आया। एक घटना है। बड़ी अद्भुत घटना है। अकबर ने एक बार तानसेन को कहा : कि बहुत संगीतज्ञों को सुना लेकिन तुम्हारे जैसा व्यक्ति कभी देखा नहीं। और, बहुत बार मेरे मन में सवाल उठता है कि ऐसा संगीतज्ञ न कभी हुआ ना हो सकेगा...लेकिन कल रात मुझे एक अजीब चिन्ता पकड़ ली है और वह ये कि तुमने शायद किसी से सीखा हो, कोई तुम्हारा गुरू हो। तुम्हारा गुरू है कोई ? तानसेन ने कहा कि उनकी बात मत छेड़िये। उनके सामने मेरी क्या वकत।

अकबर ने कहा कि मैं सुनना चाहूंगा उनको। तानसेन बोला : उन्हें सुनना बड़ी कठिन बात है। मुझे सुनना आसान है, क्योंकि मैं अभ्यासी हूं, वे अभ्यासी नहीं हैं। संगीत उनका प्रेम है, कोई कह नहीं सकता उनको कि दिखाओ। जैसे एक अभिनेता है, उससे कहो कि प्रेम करके दिखाओ, तो वो दिखा देगा। लेकिन प्रेम... क्या दिखाने की बात है। होगा तो होगा, देख सको तो देख लेना। उपाय नहीं है, उसे दिखाने का।

तो वे प्रेमी हैं संगीत के। कभी बजाते हैं, कभी नाचते हैं और कब यह होगा, उनको भी पता नहीं।

खबर भी नहीं हो सकती है, कब वे नाचेंगे। पर अकबर ने कहा कि अब तो मैं पागल हो गया हूं, मुझे तो सुनना ही होगा। तुम कोई उपाय करो। उसने कहा : वो तो नहीं आ सकते यहां और आ भी गए तो उनके आने से कोई संगीत थोड़े ही आ जाएगा। वो तो जब आता है, आता है, नहीं आता है, नहीं आता। तो प्रतीक्षा भर करनी पड़ सकती है। तो आपको वहां चलना पड़ेगा, और पता लगा लेते हैं कि आजकल वो कब गाते हैं। तो दो-चार दिन हो सकता है कि चूक भी जाएं। प्रतीक्षा करनी पड़ सकती है। तो दो-चार दिन वो रात २ बजे जाकर बैठते हैं। हरिदास की कुटी है, जमुना के किनारे। वो तो फकीर हैं। एक दिन ४ बजे रात गीत गाना और नाचना शुरू किया अपने झोपड़े में। वहां तो कोई भी नहीं, वहां तो सब छिपे हैं, पीछे छिपे हैं अंधेरे में। अकबर रोता रहा पूरे समय। फिर लौटा और बोला नहीं रास्ते में। महल पहुंचकर इतना ही कहा उसने कि मैं तो सोचता था कि तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं, और अब मैं सोचता हूं कि उनसे तुम्हारा मुकाबला ही क्या...!

अब तो सब गड़बड़ हो गया, मैं अब वो मजा कभी न ले पाऊंगा, जो मैंने अब तक तुम्हारे संगीत में लिया था। लेकिन इतना फरक क्यों है तानसेन...? तो तानसेन ने कहा कि फरक का तो साफ कारण है..'मैं बजाता हूं इसलिए कि कुछ मिलने की आशा है, बजाना मेरा आनन्द नहीं है। आनन्द मेरा उसमें है जो बजाने से मिलेगा। यश और धन जो बजाने से मिलेगा आनन्द मेरा उसमें है। बजाना तो मेरे लिए साधन है, साध्य तो मेरा वहां नहीं है। मैं कुछ पाने के लिये बजाता हूं और वे इसलिये बजाते हैं कि कुछ पा लिया है। जब उनका मन भर जाता है पाने से तो वो बहने लगता है। हम तो खाली बजा रहे हैं, इस आशा में कि कुछ मिल जाए तो भर जायें। तो मेरे उनके संगीत में जमीन-आसमान का अन्तर होगा ही। वो तो बात ही अलग है। वो Over Flowing है। कुछ इतना भर गया है कि नहीं रुकता तो संगीत से बह रहा है, किसी का किसी और ढंग से बहेगा। किसी का किसी और रूप से बहेगा, किसी का किसी और रूप से बहेगा। और हम तो खाली आदमी है, भरने की आशा में बैठे हैं।

और जिस चीज से हम भरना चाहते हैं, उससे संगीत निकलता ही नहीं। धन से भरना चाहते हैं, यश से भरना चाहते हैं, उससे संगीत निकलता ही नहीं। जब भरे होते हैं तब निकलता नहीं और जब खाली होते हैं तो निकलेगा क्या...निकालते

हैं, निकालते हैं। और जिससे भरना चाहते हैं उससे संगीत निकलता नहीं। इससे भर जाते हैं तो व्यर्थ होते हैं, खाली हैं तो व्यर्थ होते हैं। इसलिए चेष्टा चलती है, वहां चेष्टा नहीं है।

वहां तो वैसा ही है, जैसे फूल खिलता है। पक्षी सुबह गीत गाते हैं। भर गए हैं किसी आनंद से। तो जिस दिन संगीत को तू इस तरह लेगी तो मीरा की यात्रा होती है, नहीं तो नहीं होती।

एक मित्र : 'आजीविका के लिए कला नहीं हो सकती...?'

भगवान श्री : नहीं हो सकती, नहीं हो सकती। और होगी भी तो वही हो जाएगी दूकानदारी या खेती बाड़ी। जिस चीज को हम आजीविका बनायेंगे, वो जीवन नहीं हो सकता। चाहे वो धर्म हो अथवा कला हो। और जिस चीज को भी हम जीवन बना लेंगे, वो जरूरी नहीं है कि आजीविका न हो सके। लेकिन उल्टा नहीं हो सकता। एक आदमी ने बागवानी को जिंदगी समझा है, वो बागवानी कर रहा है उससे उसकी आजीविका भी चल सकती है। ये दूसरी बात है। लेकिन एक आदमी ने बागवानी को आजीविका बनाया है, उससे उसकी Life उसमें से नहीं निकल सकती। Life उसे और कहीं खोजनी पड़ेगी।

जीवन में आनंद को व्यापार नहीं बनाया जा सकता। यह दूसरी बात है कि आनंद से सहज में आजीविका के लिए कुछ मिल जाये। इससे ही अपने आनंद में खोए कलाकार आजीविका नहीं निकाल पाते। क्योंकि आनंद तो बात ही और है।

● संकलन : *अरविंदकुमार*

मनन
जीवनोपयोगी (आध्यात्मिक हिन्दी मासिक)

जिसमें प्रतिमास सन्त-महात्मा व विद्वानों के विचारों को संकलित कर ४० पृष्ठों में मन-मोहक चित्रों सहित दो रंगों में पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

मूल्य—१ प्रति : ५० पैसे, वार्षिक : ५ रुपये

प्राप्ति स्थान—

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७३ ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चितता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ००–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात ३–००
(आध्यात्मिक उपन्यास)
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

कृतज्ञता-ज्ञापन

'तू' जबसे मेरे जीवन में, ज्योति-शिखा बन कर आया
मिटा अंधेरा, हुआ सवेरा, मैंने जन्म नया पाया

पता नहीं गम क्या होता है ?
क्यों मानव रोता रहता है ?

(१)

कदम-कदम पर ढेर खुशी के
बात-बात में दौर हंसी के

फूट पड़े आनंद के झरने
सरिता–नद बन लगे हैं बहने

(२)

इस प्रवाह में, इस अथाह में
छोर कहाँ है ? ठौर कहां है

सारे बन्धन, सारे क्रंदन
छोड़ मुक्त हो गया मेरा मन

(३)

किसे कहूं, कैसे
मैं यह सब ?
अनायास जो
हुआ है यह अब

नहीं पता किसने
पाया है ?
नहीं पता किससे
आया है ?

(४)

देख रहा मैं
इसे निरन्तर
घटित हो रहा
मेरे अन्दर

मेरा नहीं, मगर
मुझ में है
मुझ में ही क्या ?
हम सब में है

(५)

देख सकोगे, जिस दिन उसको
शायद समझ सकोगे मुझको

नाच सकोगे तब मेरे संग
कर विस्मृत जग के सारे ढंग

(६)

रोम-रोम से यही कहोगे
श्वास-श्वास में यही रटोगे

मैं न रहा, अब मेरे अन्दर
'वही' बचा, जो सबके अन्दर

मिटा अंधेरा, हुआ सवेरा, मैंने जन्म नया पाया
'तू' जबसे मेरे जीवन में, ज्योति-शिखा बनकर आया

● *स्वामी परमानंद भारती*, अजमेर

भगवान रजनीश के गीता अध्याय १२ पर प्रवचन

क्रास मैदान,

बम्बई में प्रतिदिन संध्या ६-३० से

(दिनांक १० मार्च, ७३ से २२ मार्च, ७३ तक)

निवेदक—मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान-भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बंबई-९ (फोन : २६४५३०)

भगवान रजनीश के अमृत सान्निध्य में ध्यान साधना-शिविर

स्थल : माउण्ट आबू, राजस्थान

दिनांक : ६ अप्रैल, ७३ से १४ अप्रैल, ७३ तक

प्रवेश शुल्क—४० रु०, टेण्ट का ६ दिन का शुल्क—१० रु०

(संपर्क—स्वामी सत्य बोधिसत्व, जीवन जागृति केन्द्र, म्युनिसिपल स्कूल के सामने, खाड़िया चार रास्ता, अहमदाबाद-१ फोन : २४०८३)

★●★

[मुख पृष्ठ : श्री कामता सागर, ५२३ ब्यौहार बाग, जबलपुर]

युक्रान्द

मार्च १९७३